माटी की गन्ध

शीला व्यास



श्री चन्दन प्रकाशन
गंगाशहर - बीकानेर

• प्रकाशक

श्री चन्दन प्रकाशन

शीला-सदन, पुरानी लेन

पो गगाशहर–334001 बीकानेर

• प्रथम सस्करण अक्टूबर 1992

शरद पूर्णिमा आश्विन पूर्णिमा सवत् 2049

सम्पर्क सूत्र

• श्री चन्दन प्रकाशन

शीला-सदन पुरानी लेन

पो गगाशहर-334401

• मूल्य साठ रुपये

• आवरण शिल्पी अमित भारती

मुद्रक

• कल्याणी प्रिन्टर्स

मालगोदाम रोड, बीकानेर

Matee Ki Gandh Smt Sheela Vyas Rs 60

माटी की गन्ध

(कहानी संग्रह)



सत्-साहेब

श्री सद्-गुरु चरण कमलेभ्यो नम

अनन्त यात्रा के महान् ययाति

एव

सहज साधना के अमर साधक

सद्गुरु श्री

अवधूत शिरोमणि श्री चन्दन देवजी महाराज को

शत्-शत् नमन्

साहित्य सृजन की डगर पर जिसने अंगुली पकड़ कर
चलना सिखलाया

एव

निरन्तर रचना धर्मिता की ओर प्रोत्साहित किया है
उस महान् विभूति
ममता-मयी
मातृश्री



श्रीमती विद्यादेवी
को
सादर समर्पित

शिवास्ते पन्था-

श्रीमती शीला व्यास की अद्यतन कहानियो का सग्रह "माटी की गध" पाठको के हाथो मे सौपी जा रही है। इधर की कहानियो के बारे मे अक्सर रचनात्मकता मर रही है जैसी चीजें नारो के रुप मे हिन्दी की कहानी पत्रिकाओ मे उछाली जाती रही है। एक सुदूर अचल मे जो हिन्दी क्षेत्र से बहुत दूर है, बैठी हुई लेखिका जब अपनी अनुभूति से उभरे घर-आँगन की बात करती है तो स्वय मे अपने आप रचनाधर्मी बन जाती है और उसे लोकापरण के समय किसी चलते नारे की कोई जरुरत नही है। मैंने इन कहानियो को बडे ध्यान से पढा किंचित सम्वेदनात्मक प्राचीनता की गध तो है पर पारिवारिक तनाव और उसको झेल लेने की क्षमता तथा उसे अभिव्यक्त करने की शक्ति कथा-लेखिका मे स्पष्टत दृष्टि गोचर होती है। मैं इस अवसर पर इतना ही कहना चाहूगा कि यह छोटा सा कहानी सग्रह दुरुह राह पर चलने वालो के लिए पाथेय बन सकेगा।

डॉ शिवप्रसाद सिंह
वरिष्ठ कथाकार एव समीक्षक
१३ गुरुधाम कॉलोनी,
वाराणासी

कथा जगत से गुजरते हुए

शब्द में रचे का अर्थ रचे हुए को, अपने साहित्य अपने आस-पास को फिर से रचना है। रचते रहना, इस आधार विचार के साथ इन कथाओं को पढ़ते-पढ़ते ही लगा कि ये कथाएं मात्र स्थितियों का सचित्र भर नहीं, पुनः रचाव के सार्थक प्रयास हैं। यह सार्थकता 'आत्मग्लानि' और "दर्द के रिश्ते" में अधिक उभर कर आया है।

पुनः रचाव के इस तरह के दरसावों के बावजूद मुझे ये कहानियां प्रचलित अर्थ में आधुनिक नहीं लगतीं। पाठक रूप में मुझे यह 'अन आधुनिकपन' सुखद ही लगा। सम्मण रेखाएं फिर विचार की हो, व्यवहार की हो या फिर शिल्प की, तोड़ने लांघने की प्रक्रिया में बहुधा कुछ ऐसा छूट जाता है कि क्या तोड़ा गया या फिर लांघ कर कहां टिका गया जैसे प्रश्न ही उभर दिखते हैं

शीलाजी की कहानियों में मुझ पाठक को ये प्रश्न नहीं दिखे। दिखते हुए भी उकेरन में वे गंगा और रस के निकट रही हैं। उनके इस सामीप्य के साथ यह भी रेखांकित किया चाहता हूं कि अपने साहित्यिक घेरे के कारण ही वे पुरुष प्रधान व्यवस्था के चलते नारी को निमम नहीं कर पाई हैं। यह सही है निमम होना अपने आपमें विशेष मूल्य से सम्पन्न होना नहीं है। चूंकि मुझ पाठक का लिखने की धारणा ही यह है कि शब्द में रचने का अर्थ रचे हुए को फिर से रचना होता है, फिर से रचाव की यह प्रक्रिया और तीव्र रूप में उभर कर आए और पाठक को विचलित करे और स्वयं के बदलाव पर सोचने को विवश करे। मैं एक पाठक के रूप में शीलाजी के रचनाकार से यह अपेक्षा करता हूं।

अनुभूतियों के कथा दरसाव जितने शीलाजी के उतने ही निकट मुझे अपने भी लगे हैं। यह है हमारे परिवेश की मानसिकता, हैं मेरे आस पास ऐसे चरित्र बहुत देर तक लग सकता है कि हमारे परिवेश में चलती स्थितियों और उनसे उपजते 'सन्त्रास' अन्त शायद हो पर यह शायद मनुष्य जीवन का स्थायी भाव नहीं एक क्यों और एक अन्त को आना ही होता है। क्यों और "अन्त" की झलकियां हैं ये झलकें धूप की चादर बन मैं शीलाजी के कथाकार के लिए यही कामना करता हूं, सुखद यह कि शीलाजी बहती नदी के साथ मूखे सागर से भी राग के साथ जुड़ी हैं।

छबीली घाटी
बीकानेर

—हरीश भादाणी

आत्म कथ्य

जीवन म कुछ एस विराट व्यक्तित्व आत ह, जो हृदय की चित्रपटी पर हमेशा के लिये अकित हो जात ह ? एव कुछ एसी अश्रुपूरित व्यथायें होती ह ताकी मम भेदी स्दन हृदय स विस्मृत नहीं किया जा सकता, मरा यह कहानी-सह 'माटी की गध' उन्ही की व्यथा कथा स प्लावित है ।

इनम स कुछ कहानिया, 'टूट गया पिजरा' 'माटी की गध' 'रिश्ता की सचीरें' साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओ म छपी, और पाठको ने इसम निहित व्यथा का अपने जीवन म घटित व्यथा कथा ही समझ कर इनम सामजस्य बठाया, तथा मुझ प्रशसा का पात्र बनाया है । यह मेरे पाठकों का ही अनुरोध रहा तथा उन्ही की प्रेरणा है, जिसने मुझे इस कहानी सग्रह को प्रकाशित करने के लिय प्रेरित किया । मैं अपनी कहानियो क माध्यम से कोई नई बात नहीं कहना चाहती अपितु एक विशष वर्ग की व्यथा कथा को आपके समक्ष रखना चाहती हू ।

नारी को समाज म बहुत ऊचा स्थान दिया गया ह, पर उस अपन जावन म अनेक अन्तर्विरोधो से गुजरना पडता है । उत्पीडित एव प्रताडित होने पर भी मूक पशु की तरह सब कुछ सहन करना पडता है । कुछ एस दीन हीन व्यक्तित्व होत है जिन्हें अपने हृदय पर पत्थर रखकर अभिशापित जीवन जीना पडता है मरा यह सग्रह उन्ही को समर्पित ह । उनकी सवेदनाओ से मरा जुडाव कहा तक हो सका ह तथा पाठको क अन्तमन को घटनायें कहा तक झकझोर सकी ह, इसका निणय मैं सुविज्ञ पाठको पर ही छोडती हू ।

मैं अपनी माताजी श्रीमती विद्या देवी क प्रति श्रद्धावनत हू जिन्होने मुझ निरन्तर लिखने की प्ररणा दी ।

मैं अपने पिता श्री डा दव सहाय त्रिवद क प्रति हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करती हूँ । जिन्होन मुझ निरन्तर आचलिकता के बोध स प्रेरित किया एव माटी की सुवास स जुडे रहने का आत्म ज्ञान कराया ।

मरे जीवन साथी डा० सिद्धराज मरी प्ररणा के अदम्य स्रोत रह ह जिन्होन इसके प्रकाशन म अथक परिश्रम कर इसे आपके हाथो तक पहुचाया हैं । मैं मेरे मार्ग दशक डा देवी प्रसाद गुप्त उप प्राचाय, रा डूगर महाविद्यालय के प्रतिहार्दिक आभार व्यक्त करती हू जिन्होन इसकी भूमिका लिखकर मुझे निरतर रचना धर्मिता की ओर अग्रसित किया ह ।

—शीला व्यास

प्राण आज इसी माटी गन्ध के पर्याय हैं चूकि ये दोनो कहानियाँ भोजपुरी परिवेश से जुड़ी हुई है अत इनकी नाटकीय संरचना म भोजपुरी भाषा के मादक प्रयोग दृष्टिगत होते है । जैसे 'अरे भाई रे ई का भइल ? गुरसतिया के ऊपर ता महुवा के पेड़ का भूत चढ़गइल बाटे भट से कौनो ओझा पंडित बुला के झाड़ा मन्तर कराय के परी, नाही तो परान संकट म पड़ जाइ ।" 'रिश्ता की लकीरें' नामक कहानी म एक भाई के असमय निधन पर उससे जुड़ी हुई अतीत की ढेरो स्मृतियों का चित्रांकन एक बहन की ममता भरी चित्रपटी पर उभरता है । कोरा फटा पोस्टकार्ड पाकर बहन के हाथ लिफाफे म राखी रखने से रुक जाते हैं और कलसी पर भाई दूज का टीका काढ़ते समय वह ठिठक जाती है । 'रेत मे खोया अस्तित्व' एक माँ की ऐसी व्यथा भरी कथा है, जो सात बेटो के मरने से मानसिक स्तर पर ग्रस्त रहती है किन्तु लोग उसे पागल समझते है । उसकी गहन संवेदना इतना आक्रान्त करती है कि रेत के टीलो मे भटक कर वह अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेती है । 'सिमटता दर्पण' म एक ऐसी नारी की मर्म कथा है, जो लकवे का शिकार होकर कष्टमय जीवन यापन करती है । इस कहानी म वाराणसी नगरी के रूपांकन के साथ शापो एव अन्धविश्वासो से जुड़ी रूढ़ियो का भी चित्रण हुआ है । 'अभिशापित' जीवन की अन्तर्विरोधी स्थितियों की कहानी है एक पागल है जिसे पेड़ से बाँधकर रखा जाता है किन्तु सही मनोदशा म वह सभी काय ईमानदारी म करता है ।

'आत्मग्लानि' शीर्षक कहानी मे राजस्थानी परिवेश को उभारा गया है । इसम एक सामान्य सी घटना है कि गृहिणी कगन चोरी होने पर नौकरानी के माथे दोष मढ़ती है अन्तत नौकरानी के निर्दोष सिद्ध होने पर आत्मग्लानि का अनुभव करती है । 'मानसी' कहानी म अविकसित मस्तिष्क की बालिका का चित्रांकन है जिसकी असामयिक मौत पर उसके पिता को विवाह की चिन्ता से मुक्ति मिलती है । 'दर्द के रिश्ते' म बड़े घर की स्त्री मार खाकर भी उसे छिपाती है किन्तु उसी की नौकरानी अपने पर हुए अत्याचारो को दर्शाने के लिए नगी पीठ सामने कर देती है । कहानी म बड़े परिवारो म मुस्कराहट का मुखौटा धारण करने वाली नारियों की करुण कथा दर्शायी गयी है । 'जीवन का सच' नामक कहानी म बाढ़ से हुई बर्बादी का नन्ही बालिका के अल्हड़ बचपन को बोध नही होता किन्तु बड़ी होने पर जीवन की सच्चाइयो से साक्षात्कार करते हुए यथार्थ बोध से आक्रान्त होती है । 'चुनौती' म एक ऐसी नारी का निरूपण है, जो अपनी सतान को पति का नाम देने के लिए गलत रास्ते पर चलना स्वीकार नही करती । वह स्वय को स्वावलम्बी बनाकर अपनी मजिल की स्वय तलाश करती है । 'आखिरी निर्णय' पारिवारिक कलह की सामान्य कहानी है । 'विडम्बना' पुन एक मर्मस्पर्शी कहानी है, जिसम पोलियो ग्रस्त बालिका की खेलने की अधूरी इच्छा को दर्शाया गया है । वह मात्र कल्पना करके ...

है। 'विवशता' नामक कहानी में ग्रामीण स्कूलों में अध्ययन कराने वाली उन शहरी अध्यापिकाओं की विवशता को दर्शाया गया है, जो बसों में रोज धक्के खाते हुए अपना असंतोष व्यक्त करती हैं। 'आघात' में एक ऐसी माँ की कथा है जो सौतेले बेटे पर सम्पूर्ण स्नेह वर्षा करके भी मातृत्व का गौरव नहीं पाती। 'कालचक्र' में एक इंजन ड्राइवर के विवशताओं से भरे जीवन को उभारा गया है। 'परिणति' में एक अनपढ़ विधवा नारी के जीवन संघर्ष को निरूपित किया गया है जो परिश्रम से पढ़ाई करके अध्यापिका बनी और जिसने जीवन की ऊँचाईयों का स्पर्श किया। 'संत्रास' में आरक्षण विरोधी आन्दोलन के समय आत्मदाह में अपने पुत्र संदीप की व्यथा से व्यथित माता पिता की प्रतिक्रियाओं का निदर्शन हुआ है। 'आत्मबोध' शीर्षक कहानी में एक महत्वाकांक्षी पति के घर छोड़कर चले जाने तथा पुत्र की ममता से प्रेरित होकर लौट आने का ऊहापोह अंकित हुआ है। घरौंदा कहानी में किशोरावस्था में हुए विवाह के दुष्परिणाम एवं नारकीय जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हुए एवं परिवार नियोजन की आवश्यकता पर बल दिया है।

समग्र संकलित कहानियाँ जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया, हमारे पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन और परिवेश की ममस्पर्शी प्रतिक्रियाओं के रूप में रची गई है, इसीलिये इनमें ऐसी तीखी और गहन अनुभूतियाँ हैं जो पाठक की संवेदनस्तर को छूती ही नहीं वरन झकझोरकर कुछ सोचने के लिए विवश करती है। कहानीकार की यही सफलता रेखांकित करने योग्य है। इस संग्रह की कहानी सं 2,5,12,14,15 कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से सफल और सार्थक है। इन कहानियों के रचना शिल्प के सम्बन्ध में कई प्रश्नचिन्ह लगाए जा सकते है, किन्तु यह लेखिका का प्रथम प्रकाशित संकलन है और उन रचनाधर्मी सम्भावनाओं को साकार करता है, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्रीमती शीला व्यास भविष्य में और अधिक प्रौढ़ कथा शिल्प से युक्त रचनाएँ प्रस्तुत कर सकेंगी।

'माटी की गंध' संग्रह के सफल प्रकाशन के लिए विदुषी कथा लेखिका शीला जी और उनके कर्मठ पति डॉ सिद्धराज को हार्दिक बधाई देता हूँ।

दि 11 अक्टूबर–1992
शरद पूर्णिमा आश्विन पूर्णिमा सं 2049

डॉ देवी प्रसाद गुप्त
उपप्राचार्य
श्री डूंगर राजकीय स्नातकोत्तर
स्वायत्तशासी महाविद्यालय
बीकानेर

अनुक्रम

1	प्रेरणा	1
2	टूट गया पिंजरा	3
3	माटी की गध	9
4	रिश्तो की लकीरें	17
5	रेत मे दबा अस्तित्व	22
6	सिमटता दर्पण	26
7	अभिशापित	31

8 आत्म ग्लानि 36
9 आशका 40
10 दद के रिश्ते 42
11 जीवन का सच 45
12 चुनौती 48
13 आखिरी निणय 52
14 विडम्बना 59
15 विवशता 63
16 आघात 67
17 काल चक्र 74
18 परिणति 83
19 सन्त्रास 88
20 आत्म बोध 96
21 घरौंदा 103

प्रेरणा

आश्विन मास का प्रथम दिवस। मानस मे अजीब सी हलचल है। मन आशा निराशा के झोंके मे झूल रहा है। आज पूज्य गुरुदेव को हमे उन चिकित्सको के हाथो मे सौंप देना है, जो दूसरे शब्दो म ईश्वर का प्रतिरूप समझे जाते हैं। कल की ही तो बात है, जब पूणमासी का चन्द्र अपनी सोलह कलाओ के साथ उदित हुआ था और गुरुदेव की गभीर वाणी गूज उठी थी— "डाक्टर साहब अब यह शरीर मेरा नहीं रहा आप लोगो के हवाले है। मैंने इस शरीर से जो करना था सो कर लिया है। आप लोग अपना प्रयास बहुत कर रहे है, पर व्यथ राख पर घी डालने से क्या फायदा" किसे मालूम था कि यही उनके अ तिम शब्द होंगे जो सत्य सिद्ध हो जायेंग।

उनकी चरण वन्दना करते समय वे एकाएक चौंक ही तो पडे तथा मेरे सिर पर हाथ रखकर बोले—"सबकी सेवा करो, अपने कतव्य के प्रति सजग रहो, मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ है, "सिद्धराज" मेरे पास रहेगा, तुम अपनी ड्यूटी करो", यह रात हमारे लिये परीक्षा की घडी थी जो आखो ही आखो मे कट गई थी। आपरेशन थियेटर म ले जाने से पूव गुरुदव ने उनके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुये कहा "मेरी सेवा मे रहना" और उन्होने भी इसे प्राण प्रण से निभाया। मैं उस समय तो न जा सकी पर मेरा मन उनके इद - गिद ही भटक रहा था। आपरेशन करने से पहले गुरुदेव को अचेतन किया गया और उस दिन सारा भवन समूह उनके चेतना मे आने की प्रतीक्षा करता रहा कि, अब वे आखे खोलेंगे और कुछ अस्फुट शब्द उनके मुख से अमृत बिंदु सदृश्य झर उठेंगे, पर सबकी आशा निराशा मे परिणत होती जा रही थी। शरीर के रोम रोम ने कानो और आखो का रूप ले लिया था पर सभी की आशाओ पर तुषारापात होता गया, समय गुजरता ही रहा गुरुदेव अचेतन अवस्था मे ही रहे, चेतना मे लाने के सारे प्रयास विफल होते जा रहे थे, सब ओर गहन अ धेरा सा छा गया था, जीवन का एक मात्र अवलम्बन हाथ से छूटता नजर आ रहा था, दिल और दिमाग जसे सु न से हो गये थे, उसके बाद तो दिन और रात का चक्र अपनी अनवरत गति से चलता रहा, पर गुरदेव सज्ञा शून्य ही रहे।

—रोज प्रात सूर्य उदय होता और मन म एक आशा सी जगा जाता कि, आज तो गुरुदेव चैतन्य होंगे, उनके होठ हिल उठेंगे शायद वो कुछ बोल उठें। डाक्टर उनके कानो के पास मुह रखकर जोर-जोर से आवाज लगाते—

—"गुरुदेव, बोलिये ना, एक बार बोलिये, अच्छा जरा एक बार आंख तो खोलिये"

—पर ऐसा लगता जैसे वे सहज समाधि में लीन हों या इस जगत में न रहकर उनकी आत्मा किसी दूसरे लोक में विचरण कर रही है। केवल हम लोगों को भ्रम में डालने के लिये यह शरीर यहां पड़ा हुआ है।

संध्या विदा लेती, रात काली चादर ओढ़कर सो जाती पर भक्तगण रात्रि को भी सेवा में लगे रहते, शायद गुरुदेव होश में आयें और कुछ बोल उठें, इसी आशा निराशा के झूले में झूलते हुये दिन बीतते गये। पितृ तर्पण दिवस भी आकर चले गये, महा शक्ति भगवती की आराधना के शुभ दिन भी पंख लगाकर उड़ गये, पर गुरुदेव वैसे ही संज्ञा शून्य पड़े रहे। उनके विशिष्ट भक्तों ने अमूल्य दवाओं, इन्जेक्शन का प्रबन्ध किया, देहली और बम्बई से डाक्टरों के दल को निरीक्षण के लिये बुलाया गया, उन पावन विभूति को जीवित देखना ही उनका एकमात्र लक्ष्य था, उनके लिये पैसा गौण था। उनकी एक ही रट थी, लगन थी—

"डाक्टर साहब चाहे जितना रुपया लग जाये उसकी परवाह नहीं, हमारे गुरुदेव बच जायें—हमारे मन प्राण की यही पुकार है, एक बार केवल एक बार उनको होश आ जाये"

पर जैसे समस्त व्यथा - कथा की ध्वनियां अस्पताल की दीवारों से टकराकर लौट आई, गुरुदेव वैसे ही अचेतन अवस्था में पड़े रहे। नगर नगर से, गांव गांव से सुदूर प्रान्तों से भक्तगण उनके दर्शनों के लिए आते, भक्तों का समूह आपातकालीन कक्ष के बाहर बैठा रहता केवल इसी आशा में कि शायद गुरुदेव एक बार चेतन हो जायें, कुछ बोलें, पर ऐसा न हो सका।

आश्विन मास व्यतीत होता गया उस एक मास ने जैसे युग युगान्तर को अपने में समेट लिया था। कार्तिक मास ने अपने पंख फैलाये और प्रथम दिवस ही गुरुदेव ने मध्यान्ह तक शरीर का हमेशा के लिये परित्याग कर दिया। अब तक उनकी धड़कनें जो हमारे जीवन का स्पंदन बनी हुई थी, वो भी शान्त हो गई। वह महान आत्मा परमज्योति में विलीन हो गई थी। हम सबके प्रेरक इस लोक से बहुत दूर चले गये थे, उनके पार्थिव शरीर को हरिद्वार ले जाया गया था, हृदय और मस्तिष्क सुन्न से हो गये थे सब किंकर्तव्यविमूढ थे, पर काल चक्र के आगे किस का वश चलता है।

—वही मास है, वही दिन है, पर गुरुदेव का पार्थिव शरीर आज हमारे बीच नहीं है लेकिन हमारे साथ है उनका आशीर्वाद, उनकी प्रेरणा जो सदा जीवन को उन्नत सोपान की ओर अग्रसर करती रहेगी।

टूट गया पिंजरा

फूलपत सहेलियो के साथ हँसी ठिठोला करती गगा के किनारे बालू के घरौंदे बनाने मे जुटी थी। माई पुकार – पुकार कर अघा गई थी, पर फुलपत के काना पर जू ही नही रेंगी थी। कभी दुर्गा माता का चौतरा बनाती, उसम गेंदे का फूल खोसती, बनाते - बनाते खिसिया जाती और ठीक नही बनता तो गगा के किनारे पानी मे पैर डालकर सब को सब पत्थर पर बैठ जाती। उस पार से आने वाली नावो को देखती और एक दूसरे पर पानी उछालती। सझा घिरती आ रही थी। मलदहिया और मदरवा से आने वाले अहीर शहर म दिनभर दूध बेचने के बाद साईकिलो पर खाली टको लिये घर लौट रहे थे, मल्लाह बिरहा गाने मे मस्त थे। धोबी पछाड - पछाड कर मुँह से आवाज निकालते हुये कपडो को पत्थरो पर पटक - पटक कर धोने मे लग थे। जब पीपे के पुल पर से कोई मोटर गुजरती तो सारा पुल धड - धड की आवाज से गूज उठता, फुलपत और उसकी सहेलिया अचरज से इन सबको देखती और उनका जी भी धक - धक करने लगता।

फूलपत घाट पर नहान का बहाना लेकर आई थी, सझा घिरती देख माई का जी बचैन हो उठा था, पर गगा दशहरा के त्योहार की तैयारी भी तो उसे ही करनी थी, गुडिया बनाना, उसे सजाना, गगा मे सिलाना सबका भार उसी के ऊपर ही था, पर माई इन सब बातो को क्या जान उसे तो फूलपत का सारा काज ही अकारथ लगता है। दिया बाती जल चुकने के बाद जब फुलपत घर लौटी तो माई ने उसे कस कर लताडा और पीठ पर धप से एक धौल जमा दिया था, पर बाबू ने उसे अपनी गोद मे लुका लिया था और माई को बरजते हुये बोल पडे थे–

—जाय देव फुलपत की माई, काहे को बिटिया पर खिसियात हो, अब ही तो खाये खेले का दिन हो, फिर तो बेटी की जात का पता केकरे घर जाई, सुख मिली की दु ख इतो भाग की बात है"—

—और इस तरह बाबू ने फुलपत को माई की मार से बचा लिया था वसे माई का भी उस पर कम नेह नही था, चोरी छिपे माई खाने की चीजें कभी खटिया के पाये में खोसती, कभी छप्पर म और कभी हँडिया मे लुकाती और फिर फुलपत के घर लौटन पर उसे सामने बिठाकर खिलाने मे ही माई का जी जुडाता था।

वसे ता फुलपत के पडोस म बसी उस बडी काठी के लोग भी उससे कम नेह नही करते थे, जब भी वह उस कोठी मे जाती, बिनू की मा कभी उसे खाने के लिये चिडवा देती, कभी भूजा चना या उसना चावल की बनी हुई लाई जिसम नून और कडुवा तल मिलाकर खाना उसे बडा नीक लगता था। बिनू की मा माथे पर बडी सी लाल टिकुली साटे रहती और माग मे ढेर सा सिदुर परा म महावर लगाये आगन मे बाहर से अन्दर आती जाती। नौकरो को काम समझाती रहती, वह भी जरा मरा काम म हाथ बटाया करती। जब उस कोठी के बच्चे बस्ते लटकाये स्कूल जाते और स्कूल की बस उनके दरवाजे पर आकर जार जोर से होर्न बजाती तो फुलपत का जी भी ललचा उठता कि वह भी इनकी तरह कडप लगी ड्रेस पहन कर जूते मौजे डाट कर, लाल रग की बस मे बैठकर स्कूल जाये और आखिर म फुलपत से रहा नही गया था। एक दिन तो वह माई के सामने जिद हो पकड बैठी थी—

—माई हम ही ऊ लागन की तरह स्कूल जाव, हमरा के कपडा और बस्ता कुल ले दा माई, हम ही स्कूल जाब माई—

—तब माई न उसे झिडकते हुये कहा था—

—हम छोट जात के लोगन के पढे लिखे का कौनों दरकार नाही इ तो सब बड लोगन के टिटिमा बाजी है तू का कोई नौकरी करबू का ?

—और तब फुलपत मनमसोस कर चुप रह गई थी, आर उसके अबोध मन न भी यह स्वीकार कर लिया था।

लेकिन जब आमा के पेड पर बार आते तो वो और उसकी सहेलिया भी बौरा सी जाती, उस समय उनका चुप बठना मुश्किल था। जब पेडा पर कच्ची अमिया लद जाती और जोरा की आधी चलती तो ये सब इकटठी होकर कच्ची अमिया और बेर बटोरने निकल जाती, जगल जलवी तो ठेना मार मारकर तोडते उनका जी ही नही अघाता था।

गगा दशहरा के त्यौहार पर तो फुलपत और उसकी सहलिया के उछाह का ठिकाना ही न था कितने दिना पहले से ही उन्होने इसके लिये तैयारी कर रखी थी। सब अपनी अपनी गुडिया सजा कर लाती, उसे पानी म सिलाती ढेर सारी गुडिया बहती जा रही थी, नन्हे छोटे - छोटे हाथ उनके ऊपर पानी उलीच कर उन्हें आगे बहा रहे थे। किसकी गुडिया कितनी दूर जाती है और कितनी देर तक बहती है। इस बात की होड लगी हुई थी। ढेर सारी गुडिया पानी म बहती जा रही थी और फुलपत और सहेलिया मगन हाकर गा रही थी—

"गगा किनारे मोरे बाबुल का द्वार हो"
"गुडिया खिलइबे माई के अगनवा हो राम"

—और इस तरह गगा के किनारे घरौंदे बनाते, गुडिया खिलाते, बगीचे मे कच्ची अमिया तोडते हुये फुलपत न कब जोवन की देहरी पर पाव रक्खे, इसका उसे खुद भी पता न चला, लेकिन एक दिन जब वह कधे पर नहाने के लिये लुग्गा उठाये घाट की ओर अकेली जाने लगी तो माई उसे डपट कर बोली—

—"अब तू सियान हो गइलू, तोहरा के घाट पर जाये की कौनो दरकार नाहीं, चुप मार के घर म बइठ जो"—

—और फिर बिसुरती सी फुलपत मन मारे घर मे बठ गई थी बापू ने भी इधर उधर से जुगाड बिठा कर उसके हाथ पीले करने की सोच ही ली थी, आखिर जवान बेटी को कब तक घर मे बिठा कर रखता और फिर वह भी गरीब की बेटी-जिसे हर कोई जोरू बनाना चाहता है। क्या पता कब इज्जत को बट्टा लग जाये और वह किसी का मुह दिखाने के लायक ही न रहे। इससे तो अच्छा यही है कि जैसे तैसे करके उसके हाथ भर पीले कर दे। और एक दिन फुलपत के द्वार पर शहनाई बज उठी। पीली धोती पहने बरातियो से घिरा हुआ दुल्हा उसके दुवार पर आया। माई ने परछन की पहली रस्म पूरी कर दी थी, पर उस दिन कितना ऊधम मचाया था बरातियो ने ताडी पीकर रात भर पतुरिया का नाच देखते रहे। गहना को लेकर भी खूब झझट बाजी मचाई थी, उन लोगो ने। भावर तो पड गई थी पर वे फुलपत को बिदा कराने के लिये तयार नही थे। बापू ने लाचार होकर अपनी मैली कुचली टोपी उनके पैरो मे रख दी थी, तब वे पसीजे थे। रो उठा था उस दिन फुलपत का हिरदय।

—'क्यो लिया था उसने बिटिया का जनम ? जिसके कारण उसके बापू को इतनी जिल्लतें उठानी पडी थी—"

माई से अचरा मे गुड और चावल का खोइचा लेकर बडकी भौजी से गले मिलके वह कितनी रोई थी, पर यह घर तो उसे छोडना ही था, बेटी तो जन्मते ही भाग म पराया घर लिखा कर लाती है, पास के ही मदरवा गाव म फुलपत का ससुराल था, गऊ घाट पर डोली से उतार कर उन दोनो की गठजोडे से गगा पूजइया कराई गई थी, उस समय फुलपत ने गगा मइया से यही तो मागा था कि—

—"ओकरा सुहाग बना रहे ,
—ओकरे घर आगन मे सुख का वास रहे"

ससुराल के दुआर पर डाली रुकी तो वह छम - छम करता हाथ म सिंधारा लिये हुये ससुराल के आगन म उतरी थी, ओह कितना उजास था ओकरे जीवन मे । पर आज फूलपत का हिरदय रो पडा है, विधाता ने उसके साथ म कसा मजाक किया था, उसका हिरदय कितनी जगह से चिटख चिटग सा गया है।

ससुराल मे बरिस भर क भीतर ही फुलपत की काया को मानो ग्रहण सा लग गया, उसकी सोने सी देह पर मानो किसी ने माटी की परत चढा दी हो। उसके मनसेधू नत्थू को घर गिरस्ती स कोई सरोकार न था। सारा दिन गाव म डालता फिरता और सभा बीतने पर जब दिया बाती का समय होता तो घर लौटता सो भी नशे मे धुत्त होकर। फुलपत के जरा सा ची-चप्पड करने पर लातो से उसकी पूजा करने म तनिक भी नही हिचकता। घर म कभी नून तल, लकडी का जुगाड होता कभी नही, एक छोटा सा खेत का टुकडा बचा था जिस से गुजर बसर होती थी, वह भी नशे की लत मे पडकर पसा के कारण दूसरे का बच दिया था। फुलपत सारा दिन दूसरा के खेतो म काम करती, पर तो भी पेट भरने लायक अनाज का जुगाड नही बैठता। कुछ दिन बाद जब फुलपत के पेट म नन्हा सा जीव कुलबुलाने लगा था, तो सूखा चहरा खिल उठा था, उसक पीले मुख पर रह रह के खुशी की लहर दौड जाया करती थी। उसम जीवन को जीने की एक नयी ललक सो पैदा हो गई थी। एक आशा की किरण सी जाग उठी थी, मन के किसी कोने म—

—शायद आने वाले जीव का धियान करके ही इसका बाबू सुधर जाये—

—"शायद इसका मोह उसके पैरा म बेडिया बन के उसे घर गिरस्ती के बधन म बाध सके"—

—पर उसका यह सब सोचना अकारथ गया। बचवा के होने के बाद भी नत्थू की जिन्दगी म तनिक अन्तर नही आया। वह वैसे ही मुस्टण्डे साड की तरह मस्त होकर घूमता रहता।

बचवा की किलकारी और विहसता मुख देखकर एक बार तो फुलपत का जी जुडा जाता, फिर दूसरे ही छण उसे दूध के लिये बिलखता देखकर उसकी आत्मा रो पडती। फुलपत की छाती मे बचवा बार - बार मुह मारता पर भूख से लडती फुलपत इतना सूख चुकी थी की उसकी छातियो म दूध न उतरता। वह सोचती—

—"क्यो लाई वह उसे इस ससार मे जहां उसके लिये दो बूद दूध भी मयस्सर नही है।" "पर क्या इसे जन्म देने के लिये वही जिम्मदार है पति नही" वह सोचती रहती, सिसुरती रहती उसके सिर की नर्से चटकने लगती।

और उसके बाद गगा म आई बाढ ने फुलपत की रही सही हिम्मत को भी तोड दिया था, कभी सोचा भी न था कि, गगा मइया इतना परलय मचा देगी पर गगा का पानी तो अजगर की तरह सारे गाव को लीलता सा चला आ रहा था। गगा के किनारे बसा मदरवा ही तो उसकी ससुराल थी। उस दिन गगा मइया के उफनते रूप को देखकर उसने बचवा को कितना मना किया था, घर से बाहर जाने के लिये पर बचवा नही माना था और बाबू के साथ जाने की जिद कर बैठा था क्योंकि चाह भूख हो गरीबी उम्र तो अपनी दहलीज पार करती ही रहती है, बचवा भी अब माई के आचल से बधा रहने वाला बचवा नही था, सो बचवा ने भी माई की बात नही मानी और वह बाबू के पीछे लग गया था।

सझा घिरती आ रही थी, गगा मइया हू–हू करती तेजी स आगे बढी चली आ रही थी। वह दूर दूर तक आखे फाडे उन्हे देख रही थी पर उन दोनो का कही नामो निशान भी नही था। तभी चारो ओर चीख पुकार मच गई थी।

"अरे बचवा हो, बाबू हो,माई हो,भागो भागो,' का शोर सब जगह मच गया था।

लोगो के घरो क छाजन बह चले थे गाय बकरिया हाथ पैर फैलाये आखो मे कातरता लिये पानी मे बहती जा रही थी। फुलपत का कच्चा घर भी चारो ओर से पानी मे घिर चुका था, वह ओसार मे से पानी निकालती पर वह भरता ही जा रहा था। फुलपत भी चारो ओर मे पानी म घिरी कमर तक पानी म खडी अभी भी दिया हाथ म लिये बाट जोह रही थी पर उस घोर अधियारे म जहा चारो ओर पानी का साम्राज्य था, कुछ दिखाई नही पड रहा था। सेवा दल वाले नावें लेकर लोगो को बचाने के लिये आ पहुचे थे। लोग पानी मे डूबत उतरात हाथ हिला - हिलाकर चिल्ला चिल्ला कर उन्हे सहायता के लिये बुला रहे थे। जीने की आस म उनकी सास अटकी पडी थी, सबके प्राण मुसीबत मे पड गये थे। फुलपत को पानी मे डूबते उतरात देख किसी न उसके बाल पकड़ कर ऊपर खीच कर नाव म चढा लिया था और विश्वविद्यालय म लाकर उसे छोड दिया था।

एक हफ्ता तक गगा मइया परलय मचाती रही, पता नही कितन गाव उनकी गोद मे समा गये। जब गगा का पानी उतरान पर आया तो फुलपत मन मारे हिरदय पर बोझा सा लिये अपने नैहर पहुची तो समूचा घर जैसे भाय भाय

कर रहा था। बाबू माई किसी का कही पता न था। टूटा मचान और माई की फटही लुगडिया देखकर फुलपत चीखती चिल्लाती गगा की तरफ भागती जा रही थी और चिल्ला चिल्ला कर कह रही थी—

— 'माई हो बाबू हो, तू रहवा बाटन, अर भोजी हो भइया हो, हमरा के छोड के तू सब लागन कहा चलगइन हो, अब हम कईसे जीयब' ?

—फुलपत भागती जा रही थी। चारा ओर कीचड ही कीचड थी कीचड म उसके पैर बार बार धसते पर वह फिर खडी होती गिरती पडती भागी जा रही थी उसकी समूची देह और लुगा कीचड से लथपथ हो गये थे, पर उसे इसकी परवाह नही थी। उसका हिरदय दुख से लहुलुहान हो रहा था। आज वह अकेली थी, बिलकुल अकेली, जिस गगा मइया न उसे भरापूरा ससार दिया था उसी न सब कुछ वापस ले लिया था। उसके टूटे दिल की बिथा सुनने वाला वहा कोई नही था म लहरें नही नही—

फुलपत की आखा म आग बरस रही थी, वह चीख चीख कर कह रही थी —

—'ह गगा मइया हमार सुहाग लौटा दा हमार बचवा हमके वापिस करा, हमार बाबू माई, मइया भोजी कहवा बाडेन बतावा, बतावा, हमरा के जवाब दा हमार ससार उजड गईल। हमरा पर इतनी किरपा और करा कि—

—इतना कहत कहत फुलपत औंध मुह गगा घाट पर गिर पडी और गगा की लहरा न उसे भी अपनी गोद म समेट लिया।



माटी की गध

उस दिन नेऊर चाचा भौंचक से बेटा का मुह ताकते रह गये थे, उन्हें लगा था जैसे किसी ने उनकी छाती पर कस कर घूसा मारा हो। कितनी बडी बात बटो ने उनके सामने कह दी थी। उन्होंने केवल यही तो कहा था—

—"अब तू लाग सियान हो गइला, जरा –मरी गाव की तरफ भी जाये के चाही"—

—इस बात पर बेटो ने इ जवाब पकडा दिया था कि—

—"ऐ बाबू हो, हम गाव ना जाब, हमरा से ऊहा फौजदारी ना होरवी। तोहार जो मन हो सो करा—"

यह सुनकर नेऊर चाचा की आत्मा रो पडी थी। बीता हुआ बचपन उनके सामने ठाठे मारने लगा था। गाव के चप्पे चप्पे से उनका मोह का बधन बधा हुआ था, और जब तक ईया जिन्दा थी, उनकी जान परान नेऊर म ही अटकी पडी थी, छोटके बेटवा जो ठहरे। वसे भी छोटे बेटे पर मा का प्रेम ज्यादा रहता है क्योंकि वह पेट पोछना होता है।

—जब जब बडके भइया ईया के सामने खेत के बटवारे की बात चलाते तब वो बार बार यही कहती—

—"अब ही तो हम बठल बानी। हमार मुवे बाद हमार लाश पर बटवारा होरवी"

नेऊर चाचा के काना मे ईया की यह बात हर समय गूजती रहती, कान सन सन करने लगता, ऐसा लगता जैसे कान के अन्दर कोई कीडा रेंग रहा है। पर आज से दो वरस पहले ईया न भी तो इस ससार से हमेशा के लिये विदा ले ली थी। गाव की चौहद्दी मे घुसने स पहले ही जब नेऊर चाचा ने ये समाचार सुना कि ईया नहीं रही तो वे सिर थाम कर बैठ गये थे, एक मोह का बन्धन था, जो टूट चुका था पर दूसरा मोह का बधन था गाव की माटी, जिसे वह छोड नही पाय थे। डेहरीआनसोन के किनारे बसा उनका छोटा सा गाव ढोढन–डिहरी। शहर की चहल पहल से दूर ठेठ बज्जर देहाती इस गाव के लोग। स्टेशन

स गाव तक जाने के लिये बैलगाड़ी रास्ते भर हेचू हेचू करती हुई मेड के धचके से हिलती डुलती, चारो ओर कमर तक पानी मे खड़े धान के लहलहाते खेत, जरा सा मेड चूके कि गप्प दे पानी मे ही गिर पड़े। कभी ता गाम पर सोन नदी की ऐसी किरपा होती हैकि धान से घर कुठार कुल भर जाता है और कभी ऐसी दरिदर अकाल की छाया पड़ती है कि बाल बच्चे दाने दाने वास्ते तरस जाते है। कौनो कौनो बारिस तो सोन नदी का पानी आपन कुल मरजाद तोड के हू – [redacted] करके समूचे गाव मे परलय मचा देता है। सोन नदी पर बना पुल और पलेटफारम हिन्दुस्तान का सबसे बड़का पलेटफारम के नाम से ही लोग जानेला पर ओकरे किनारे जो मानुष मरद बसेला है, ओकरी मनोबिथा आवरा दु ख, ओकरा दिन-रात गरीबी से जूझना, कौनो नाही जान सकेला।

नेऊर चाचा अइसन ठेठ देहाती गाव मे जनम लेकर भी ठेर पढलिख गये और पटना मे ऊची सरकरी नौकरी करते रहे। ए गो जीप और दू गो चपरासी भी गोरमेन्ट की ओर से मिले रहे। बाल बच्चन शहर के अच्छे से अच्छे स्कूल मे पढते। ठाठ से शाम को मोटर मे चढकर घूमने जात पर इन सब सुविधाओ के मिलने पर भी चाचा का मन गाव मे ही भटकता रहता। बारिस मे दो–तीन बार गाव जाते कबहू बडके बेटवा को या कबहु बडकी बिटिया को भी लिया जाते। कौनो पाहुन तो थे नही कि टेशन पर डोलिया कहार और बैलगाडी खडी रहती पैदल ही कच्चे रास्ते से गाव जाना पडता। पर एक बेर जब बडकी बिटिया सुरसत्ती बियाह मे शामिल होये बदे बडके चाचा के साथ गाव गईल तो उनका रास्ता चलना हलकान कर देहलिन, बार बार एक ही सवाल करती—

— ऐ बाबू हो हमार गाव केतना दूर होई'' ?
''ऊ का समुनवा लौकत हो '

सुरसत्ती आखे फाड फाड कर 'देखती पर दूर तक कुच्छो दिखाई नही पडता हा खेत खलिहान जरूर दिखाई पडते। घर पहुचते पहुचते साझ पड गई और जब घर के दुवार पर पहु ची तो न घर मे केहू के परनाम न केहू के गोड लगलस, सुरसत्ती तो धाय दे खटिया पर ही गिर पडी। सब ओर चीग पुकार मच गई। —बिटिया के का हो गइल— ऐसन हाल बेहाल काहे भरी है — दादी गोड मसलने लगी और मतवा सरसो कातेल कपारे पर धर के चापने लगी।

आज ससार म न तो मतवा है और न दादी पर उनकी ममता पियार सुरसत्ती के मन प्राण में आज भी रचा बसा हैं। इतने मे ही सेर भर के लोटा म दूध लेकर नाक से माथे तक सेंदूर लगाये मइया की दुलहिन सुरसत्ती के पास आकर धम्म से बइठ गइल और कपारे पर हाथ देकर रिरियाने लगी– ''अरे माई

रे ई का महल ?" सुरसतिया के ऊपर तो महुवा के पेड का भूत चढगइल बाटे, झट से कौनो ओझा पडित बुला के झाडा मन्तर कराये के परी, नाही तो परान सकट मे पड जाई—

रात भर सुरसत्ती बुखार म सुलगती अट सट बकती रही– गाव भर के मुल ओझा पडित झाडा मन्तर फूक कर पइसा ऐंठ कर ले गये, पर सुरसत्ती का जीव ठिकाने न हुआ, बुखार तो जैसे उतरने का नाम ही नही लेता था । भिन सहरे पालकी मे बइठा कर शहर ले जाकर बडके डाक्टर को दिखाये, तबे बिटिया की तबियत मे सुधार हुआ । नेकुर चाचा तो पहिले ही जानते रहे कि ई शहर मे रहेवाली बिटिया है, बिना दवा दारू के बुखार ना उतरी । पर मौजी और मतवा केहू का कहा माने तब तो—

बुखार उतरने के बाद तो सुरसत्ती ने गाव के बियाह म खूब मौज ली थी । रात के समय सब मौजी, गाव की औरतें चेहरे पर घू घट डालकर पैरों मे हजारा पायजेब पहिन कर गोला बना बना कर नाचती, और गीत गाती–

"काठवा पर का सिपहिया र गेडूवा हमसे मागे,–
बाहर से देइब रे भ्रदर नही जइबे ' ।

दूसरे मौहल्ले की ग्रामीण औरतें जवाब देती—

"बरिहे बरस की उमरिया रे,
लाज से मरि जइबे ।"

यह बारह बरिस वाला गीत सुरसती को बडा नीक लगता, क्योंकि वह खुद भी तो उस समय बारह बरिस की ही थी, इस गीत के बोल के साथ उसके मन प्राण झूम उठते और वह भी उनके साथ गोले मे नाचने लगती ।

—नेकुर चाचा का गुस्सा सबका हलकान कर देता है ।

एक बार नन्हकी गुड की हडिया म फटा कपडा मे अ गुरी से छेद कर करके गुड निकार के खाली । तो ओकरा जान परान सकट मे पड गइल चाचा तो ओकरे पीछे हाथ धोकर पड गये । नन्हकी का हाथ पकड कर उसको मुईया पर बइठा दिये और सामने रख दिये गुड से भरी हडिया, और हाथ मे डडा लेकर बइठ गये, डपटकर बोले–

—"चल ई सब गुड खो, भकोस, आज तोहरा के इ सब गुड खाये के परी, खइबू की ना । अब ही एक ड टा देब, चोरी करे का लच्छन सीखत बानी, माल

दिन ससुराली जइब् तो हमार कुल खानदान के नाम पर बट टा लगादबू"—

नहकी डर के मार रान लगी पहन धीरे धीरे फिर जारा से, गुड़ खाती जाती और रोती जाती खात खात उल्टी होन लगी नाक से खुन गिरने लगा। आखिर बच्ची ही तो ठहरी, इतना सारा गुड खाना कोई उसके बस की बात थाड़ ही थी, वह रोती जाती और कहती जाती—

"ए चच्चा हो अब चोरी ना करब, अबकी हमरा के माफी देदहिन

बार बार इह बतिया कहती पर नेऊर चाचा ता एक बात की रट लगाये रहे कि—

"आज तोहरा के ई सब गुड खाये के परा, भले ही तू मुई जा"

"बडकी माई ओसारे म बइठी घट भर म ई सब झंझट बाजी दखत रहलिन। आखिर म गप्प देनी उठकर नन्हकी का हाथ पकरि के ओसारे म ल गइलिन और टप्प से इ सुना दहलिन।"

"आज सब गुस्सा नन्हकी पर ही उतरी का," काल दिन बिटिया के कुच्छा हो जाई तो माथे पर हाथ धर के रोव के परी"—

और इस तरह बडकी माई न नऊर चाचा के क्रोध से नन्हकी को बचा लिया था वसे ता चाचा का दिल भी अन्दर ही अन्दर पसीज रहा था। आज नन्हकी इस दुनिया म नही है पर नऊर चाचा की आखा के सामने उसकी गुड की हडिया के सामन राती बिसूरती सूरत बार बार भूलाने से भी नही भूलती।

गाव म नेऊर चाचा की बडी मरजाद रहलिन। कठिन से कठिन समस्या आने पर लाग नऊर चाचा की सलाह लिया करते हैं वो गाव के सबसे ज्यादा पढे लिखे आदमी जा ठहरे। सबके मसीहा दिन रात सबके सुख दुख म शामिल। गाव म किसी की भी बिटिया का बियाह हाता तो नेऊर चाचा की धान की फसल का नफा उसके नाम हो जाता, किसी के घर कोई कारज पडता धान की बोरी रातो रात उसके घर पहुच जाती नाई धोबी कुनबी कहार गाव का सत्तर जात के लाग किसी के बीच काई जात का बधन आडे नहीं आता। सबके लिए उनकी करुणा की धारा अनवरत रूप से प्रवाहित होती रहती। पर उन्हीं नऊर चाचा को अपनी बडकी बिटिया के विवाह मे कितनी झंझटबाजी उठानी पडी थी लडका जात का ब्राह्मन और अव्वल दर्ज का मेहनती। बाप उसके बचपन म ही भगवान के प्यारे हा गय थे, सो दिन रात मेहनत करके पढाई मे

नगा रहता । चाचा उनका दखत ही रीझ गय थ । नात रिश्तदारी गाव गात के नबही लाग इस वियाह मे आय थ, क्योकि नऊर चाचा के घर मा इ पहला वियाह पडा था, पर एन मौके पर ननसार के लाग ही दगा दे गय । आहर तो दुवार पर पाहुन का परछन हो रहा था और दूसरी आर लोग पुलिस दरोगा लकर आ गय और इ टा तान के बोले—

"इ वियाह हम ना हाइस दब, हमह दखन वानी कि तू क सन विटिया का वियाह रचा लेबा"

—सबकी सिटटी - पिटटी गुम । पर नेऊर चाचा सधी हुइ आवाज म बाले थे—

"पण्डित जी आप दुवार पूजा का कारज जारी रखिय, विटिया के तल चढ गइल हो । मटमगरा की रसम भी हो गइ है ओकरा वियाह ए ही मडवे मे अउर ए ही लगन मे ऐही लरिका के सग होइ, कानो माइ का लाल अब इ वियाह ना राक सकेला—"

—नेऊर चाचा की इ घापणा से दरोगा साहब सार सिपाहिया के साथ ऊहा से फूट गय और बाद म तो ननिहाल के लोग भी पसीज गय थे, क्याकि जिस विटिया को उन्हाने अपनी गोद मे खिलाया था, वही आज पराइ होन जा रही थी- *वास्तव मे मनुष्य का हृदय कितना विचित्र है, शायद इसके समान क्षण क्षण* परिवर्तनशील होन वाला और कोई तत्व इस ससार मे नही । पत्थर के समान कठार हृदय के अन्दर से किस समय स्नह और ममता का छिपा हुआ सोता फूट पडे, इसे कौन जान सकता है ?

—नेऊर चाचा ऊपर से चाहे जितन ही कठार हा पर हिरदय से इतने कामल थे कि बेटी का विदा करना उनके बस की बात नही थी । गाव म किसी भी घर से जब बेटी की विदा होती तो नेऊर चाचा की आखे भर जाती, इसीलिय व कभी बहना के गाव भी उनसे मिलने नही जाते, क्योकि व भेटते ही धार पकड कर रोने लगती थी । फिर अपनी जाई बेटी को तो विदा करना ता और भी कठिन था । जब बिटिया विदा हुई तो उसकी आखे चारो तरफ बाबू जी को खाजती रही पर नेऊर चाचा लुकत - छिपत रहे कि कही बेटी के सामने उनके आसुआ का बाध टूट न पडे उसका चेहरा देखत ही वह फफकने न लग जाते और जब विदा होने के बाद दो बरस तक ससुराल से उसका कोई समाचार नहीं मिला तो चाचा तो ओकरे सोच म पागल से हो गय । आखिर में बेटी के ससुराल म चिट्ठी डाल दिये केवल एक लाईन लिखकर—



"पाहुन किरपा करके हमरा के समाचार दा कि हमार बिटिया ह" है या मुय गईल' —

चिट्ठी बाचन ही पाहुन बिटिया को लेकर जब पहुंचे और उनके घर लगे तब जाकर वही चाचा के कलेजा म ठण्डक पहुची थी।

इतना कोमल हृदय रखने वाले नेऊर चाचा की दृढ़ संकल्प शक्ति और मनोबल ने सदा उनका साथ दिया था। उनकी जिन्दगी समस्याओं से जूझ बीत रही थी, सिद्धान्तो की लड़ाई जारी थी घर में भी बाहर भी। जीवन में एक समय भी आया था कि नेऊर चाचा को अपनी गिरस्ती की दीवारें गिरती सी जान पड़ी थी, जब दोनो लड़के बेटवा चोरी छिपे बियाह कर लिये थे, बड़के तो कोर्ट म जाकर बियाह कर दुलहिन ले आये थे और छोटके ने आर्य समाजी ढंग से बियाह रचा लिया था। जब नेऊर चाचा को ई बात पता लगी तो वे दुहत्था माथे पर मार कर रो पड़े थे, गरियाने लगे थे। अपने परान देने पर उतारू हो गये थे, उन्हें लगा था कि गांव कैसे जायेंगे लोगों को क्या मुंह दिखायेंगे, पर दूसर ही क्षण उनके सिद्धान्तो ने उनको डूबने से उबार लिया था, उन्होंने वैदिक संस्कारों से बेटो के फेरे उनकी मनपसन्द दुल्हनों से करवा दिये थे। जाति बिरादरी मे अपनी पैठ पुनः स्थापित कर ली थी। अपनी गृहस्थी को खण्ड - विखण्ड होने से बचा लिया था।

— अपने इस कदम पर उन्हें जीवन म कभी भी पछताना नही पड़ा, क्योंकि दोनो बेटा और बहुओं ने उन्हें अपना भरपूर सहयोग दिया था और कहा था—

—"बाबूजी ! आप सब चिन्ता छोड़ दें, हम सब मिलकर भार सम्भाल लेंगे– आपकी गृहस्थी का"—

इस प्रकार परिवार - गृहस्थी की समस्त जिम्मेदारी बेटा और बहुओं के के सशक्त कन्धों पर डालकर नेऊर चाचा इतिहास लेखन के महान् काम - क्षेत्र मे अपने स्वप्न को साकार करने निकल पड़े।

उन्होंने सर्वत्र घूम घूम कर अपने सिद्धान्तो का प्रचार प्रसार किया। नई नई मान्यतायें एवं धारणायें स्थापित की। पुरानी मान्यताओं को तर्क सहित खण्डन करने के लिये उन्हें विश्वविद्यालयों की वैचारिक गोष्ठी म ससम्मान आमन्त्रित किया जाता साथ ही उनके विचारो और सिद्धान्तो को पत्र - पत्रिकाओं म सर्वाधिक छापा जाता रहा।

नेऊर चाचा ने इतिहास विधा पर अनेकानेक ग्रन्थो की रचना की। भारत के उच्च - कोटि के प्रकाशको ने भी उनके महान् ग्रन्थो का प्रकाशन किया।

रहा तक को उनकी पुस्तकों की प्रतिष्ठा अमेरिका और इगलैंड तक होने लगी। इससे नेऊर चाचा की प्रसिद्धि विश्व के महाद्वीपो मे भी फैलने लगी। उनकी लिखी पुस्तको का अग्रेजी और भोजपुरी भाषा मे भी अनुवाद हो गया है। उन्हें इतिहास विषय के सर्वोच्च सम्मान से सम्मानित किया गया। उनकी यश, कीर्ति एव प्रतिष्ठा की पताकाए सर्वत्र फैलने लगी।

—इतना सब हो जाने पर भी नेऊर चाचा को आत्मिक शान्ति नही मिली। उनका मन बार बार एक ही प्रश्न पूछता—

—क्या नये सिद्धान्तो को मान्यता मिलेगी? क्या इतिहासकार उनकी धारणाओ को स्वीकार सकेंगे?

—क्या उनके द्वारा प्रज्जवलित की गई ज्ञान ज्योति का प्रकाश विश्व को नया मार्ग प्रशस्त कर सकेगा? आदि - आदि बातो से नेऊर चाचा कभी - कभी इतने अधिक निराश हो जाते कि उन्हें अपने गाव की माटी की याद झकझोर जाती।

—घर गृहस्थी की ओर से नेऊर चाचा को कोई चिन्ता नही है। सब बेटे बेटिया का शादी - विवाह हो गया है। बेटे शहर मे ऊचे - ऊचे पदो पर नौकरी कर रहे हैं। इतना सब होने पर बेटो की मा बार बार व्याकुल हो उठती है। रह रहकर वह एक ही सवाल करती है—

"—हमार घर भरल - पूरल रहल। आज सब बेटवा - बिटियन हमरा के छोड़ के दूर चल गइल बा। हम उनका के लेकर ढेर सपना सजोले रहनी"

—नेऊर चाचा ने दिलासा देते हुए कहा– 'काहे के हलकान होत हाऊ। अब तोहार बचवा के पाख जम गइल बा। अब ऊ ममता के पिंजरे मे रहे वाली चिरई नइखे। आकर मोह छोडि दा।

—बेटे भले ही बडे शहरो मे रच - बस गये हैं उनका खेत खलिहाना की ओर आई रुझान नही है पर नेऊर चाचा डोढनडेहरी गाव मे साल मे दो - चार बार जरूर आते हैं।

—ठेठ बज्जर देहाती डोढनडेहरी–जैसे गाव मे नेऊर चाचा के नाम पर सरकार ने वाचनालय और पुस्तकालय खुलवा दिये हैं।

—सरकार से पत्र व्यवहार करके नेऊर चाचा ने टेशन से गाव तक जाने के लिये पक्की सडक बनादी है।

— गांव म अब राजनीति, फौजदारी घुस ः ई है । जरा जरा ...
पर लाठियाँ मान और बरछी नकर लाग बिना साच समभ एक दूसर पर ...
करने लग जान हैं । भाई - चारा और आपसी मला - मिलाप का ता ...
मूल गया है ।

—पहन जैसी बात नही है अब– गांव की मिट्टी म जहर सा घुल ...
है ।

—"जिसकी लाठी उसकी भैंस" वही कहावत चरिताथ हा रही है । अनु...
सूचित और जनजाति के लाग जो वर्षों मे सवण के यहा रहकर अपने जी...
यापन करत रह आज उन्हें भी अपने प्राणा के लान पड रह हैं ।

—गाव के रिश्ता मे भी स्वाथ का बोल - बाला सवत्र देखन को
मिलता है ।

—नेउर चाचा इस समय नौन्शक के हैं । शारीरिक शक्ति से उपराम
होने पर भी उनका मन आज भी गाव की माटी से जुडा हुआ है । गाव की
जमीन बेचन का ख्याल आते ही उनकी मन - स्थिति जल विहीन मछली की तरह
हो जाती है । उनके मन मे अन्तद्वन्द्व चल रहा है । वे अपनी गाव की माटी को
किसी भी कीमत पर बचना नही चाहत हैं ।

—उनका शरीर इसी गाव की माटी का एक महत्वपूण अग है ।

—उनका प्राण इसी माटी के कण कण का ऋणी है । इसी माटी ने
ही उन्हें पाला है पोसा है बडा किया है आर सम्मान तथा ख्याति प्रदान की है ।

—उनका बचपन इन्ही मन खलिहानो म बीता है ।

—इस माटी की गध उनके रोम रोम मे बसी हुई है ।

—उनका जीवन उनका आदश और उनका प्राण आज इसी माटी की
गध का पर्याय है—

रिश्तो की लकीरे

—अभी अभी पोस्टमेन दरवाजे की झिरी मे से पोस्टकार्ड डालकर चला गया है, पोस्टकार्ड हाथ मे लेते ही मन शक्ति हो उठा है, काला कटा पोस्टकार्ड समेत दे रहा है, कि अवश्य ही हमारा कोई प्रिय स्नेही हमसे सदा सदा के लिये दूर हो गया है, और यह शका निमू ल नही थी । लिखावट पर निगाह पडी– अरे यह ता मा के हाथ की लिखावट है । मन अनजानी आशका से काप उठा, शरीर मे से शक्ति निकलती सी जान पडी, किस तरह पत्र पढू, जी कडा करके पत्र की चार लाइने पढी "मुनु भइया नही रहे आज बारह दिन हो गये"

—ओह ! यह क्या हो गया ? कभी पल भर के लिये भी ऐसा सोचा ही न था । कुछ देर पहले ही तो मैं शादी के घर से आई थी, जहा एक जीवन का दूसरे जीवन से गठबधन जुडा था, पर यहा तो मेरा भइया सारे बधन तोड कर इस ससार स सदा के लिय चला गया था ।

मन विश्वास करने के लिये तैयार नही था, बार बार आखो मे आसु आते उन्हें पाछती "लाइना पर दृष्टि डालती, नही ऐसा नही हो सकता, लगता है कुछ लिखने में भूल हो गई है, ऐसे जवान अहीन भइया का क्या मौत इस तरह चुपचाप आकर शिकजे म फस लेगी, पर यह सच था, क्योकि मा भला झूठ क्या लिखेगी ? अपने उस कलेजे के टुकडे के लिय' जिसका उ होने "मा मरे मौसी जीये" की तरह बचपन से ही अपार दुलार दिया था और अपनी ममता का रस पिलाकर पाला पासा था ।

अभी दीपावली का त्योहार बीते बहुत दिन भी नही हुआ है, एक मास पहले ही तो भया को जीता जागता छोडकर आई थी । भाई दूज का टीका इन्ही हाथो ने उनके चौडे मस्तक पर लगाया था । कितना खुश थे भैया उस रोज, पुलक कर बोले थे —

आज बहुत साला बाद चारो बहनें हमारे पास है, कितना अच्छा लग रहा है"

—और वास्तव मे यह एक महज सयोग ही था, बचपन मे एक साथ खाई खेली बहनें दूर-दूर ब्याह दी गइ थी, शायद ही कभी तीज त्योहारो पर एक जगह

इकट्ठी हो पाती थी। कितना चमक रहा था भइया का रोली लगा वह चौग ललाट और मुस्कराती सूरत, जो आखो से ओझल हो गइ है, पर जिसकी स्मृति मन प्राण मे अभी भी बसी हुइ है।

अबकी ससुराल आते समय कितना रोका था मुनु भइया ने। हलका सा बुखार ही तो था मुझे, पर ढेर सारी सलाह दे डाली थी भइया ने ट्रेन म आराम करना, चाय पीती रहना, पाव रोटी खा लेना, दवा साथ म रखली है, सर्दी का अहसास हो तो एक गम चादर रख ले आदि - आदि। दूसरो को इतनी सलाह देने वाले भइया अपने स्वास्थ्य के प्रति इतने लापरवाह क्या रहा समझ म नही आता ? छोटी छोटी बातो का भइया बहुत ध्यान रखते थे।

—वह कोना फटा पोस्टकाड मुझे अतीत के आगन मे खीच लाया है। बचपन की कितनी स्मृतिया जुडी हैं मुनु भइया के साथ–चारो बडे भइया और उनके साथ खेलती मैं, सबसे उम्र मे छोटी होने पर भी हमारे बीच उम्र का कही कोई व्यवधान नही था। दिन भर मैदान म क्रिकेट, गुल्ली डण्डा, टिन टप्पा खेलना एक दूसरे को पिदना और पिदाना। दशहरे की छुट्टियो मे रात होने पर रामलीला मे जाकर नक्कटइया और लका दहन देखना। मेले मे से मुखौटे और धनुष बाण लाकर उनका राम–लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न बनना और मेरा सीता बनना, दिन भर उधम मचाये रखना।

मुनु भइया हम सबसे बडे थे, पर सबसे बडे होने पर भी गभीरता उन्हे छू नही गई थी, वे हर समय हँसी मजाक करते रहते। जब हम लुका छिपी का खेल खेलते और भइया हमे ढूढ नही पाते तो बार बार एक ही पक्ति दुहराते—

'कोई हँस दे भई, कोई हस द।'

उनकी आवाज सुनकर हम खिल खिलकर हँस पडते और इस तरह हम पकडे जाते।

जब हम एक साथ खाना खाने बैठते तो भी वही होड और मस्ती का दौर रहता।

"जो पहले उठेगा वह देवता
जो बाद मे उठेगा वह राक्षस'

किस तरह भइया सबसे पहले खाये अध खाये ही उठ जाते और हमेशा देवता की ही श्रेणी में ही आते यह चोरी हम कभी पकड नही पाये। बचपन स

ही देवता की श्रेणी में आने वाले मेरे भइया जीवन के आखिरी क्षण तक देवता ही बने रहे, कोई कुछ भी कहता भैया निर्विकार भाव से और निश्चिंतता से मुस्कराते बालों में कंघी करते रहते। कहते हैं अंतिम यात्रा में भी भइया के चेहरे पर वही निर्विकारता और निश्चिंतता का भाव था, जैसे कोई गहन निद्रा में लीन हो।

—यादों का सिलसिला अनवरत जारी है। बाजार में चाहे कितने ही आम और अमरूद क्यों न बिकते हों, पर हमें तो अपने पत्थर मार-मार कर गिराये कच्ची अमिया और अमरूद खाने में ही सुख मिलता था। शाम होते ही अंधेरा घिरने पर घर की छत पर चारों भइया चढ़ जाते और बगीचे में अमरूद पर ताक - ताक कर निशाना लगाते और मैं पेड़ के नीचे से उन्हें बटोर - बटोर कर लाती। हम सब मिलकर उसके बराबर - बराबर हिस्से करते कभी कभी इस बटवारे में लड़ाई झगड़े नोच खसोट की नौबत भी आ जाती, माँ बाप की कसमें खाई जाती। एक दूसरे को मारने मरने के लिये हम चढ़ बैठते पर फिर लड़ भिड़ कर एक हो जाते। इस तरह हम कच्ची अमिया और पके अमरूदों का बटवारा ही करते रहे और हमारे बीच से बचपना कब दीवाल फांद कर चला गया इसका हमें अहसास तब हुआ, जब हम नियति के हाथों विवश होकर दूर दूर चले गये—

बचपन से ही मुन्नु भइया का पढ़ाई लिखाई की ओर झुकाव कम था। रेडियो, टी वी की ओर ज्यादा। इसलिये भैया ने अपने लिये यही क्षेत्र चुन लिया। पूरी रेलवे कालोनी में अपने व्यवहार तथा हुनर के कारण भैया सबके प्रिय बन बैठे थे। कोई बुलाने आता चाहे दिन हो या रात। वे समय कुसमय कुछ नहीं देखते सब काम छोड़कर चले जाते।

—मुझे आज भी याद है—शादी के बाद भइया ने एक सुन्दर सा ट्रांजिस्टर बना कर दिया था इधर उसके तार कुछ समय पहले टूट गये हैं, सोचा था अबकी छुट्टियों में जाऊंगी तो ठीक कराकर लाऊंगी, पर किसे पता था कि भइया की सांसों का तार एकाएक बिना कोई आवाज किये टूट जायेगा।

—मेरे मौसी मौसा जी के तीन बेटों में सबसे बड़े भइया "मुन्नु भइया" ने कभी मुझे मौसेरी बहन नहीं समझा, समझते भी कैसे, जब उनके अम्मा बाबू जी ने बचपन से ही मेरा बेटी की तरह लाड दुलार किया था। मुझे पाकर उन्होंने कभी बेटी की कमी महसूस नहीं की थी। कितना चाव था उन्हें बड़के भइया के ब्याह का। रोज डाक से दजनों फोटो आते, उन्हें बैठ कर छांटा जाता, कभी पास कभी दूर लड़की देखने का सिलसिला चलता रहता पर भैया कोई न कोई कोर कसर निकाल ही देते। आखिर मौसी गुस्सा होकर कहती—

"आखिर तुम्हें कैसी लड़की चाहिये ?

कोई हूर की परी तो मिलने से रही

भइया उसी चिर परिचित मुस्कराहट में कहते—

"ऐसी जो इतनी कोमल हो कि चले तो मुझे उसके ---, के कंकड़ों को बीनना पड़े कि कहीं उसके पैरों में गड़ न जायें" ?

कभी भइया के सिर पर भँवरा बैठता तो कहते—' अब बहुत जल्दी ही मेरी मनचाही दुल्हन मिल जायेगी ।

पर मौसी मौसा भइया के ब्याह की अधूरी साध लिए इस दुनिया से चल गये । उनके जाने के बाद भइया सारा घर ऐसे सँभालते, जैसे कोई कुशल गृहिणी सँभालती है । दोनों छोटे भाइयों को अपने हाथों से खाना बनाकर परोस कर उन्हें खिलाते, घर की व्यवस्था करते भइया अम्मा बाबूजी के अभाव की पूर्ति में लग रहते । बाहर से आये मेहमान की भी भइया बड़े जोर शोर से आवभगत करते । जिस तरह मौसी मुझे ससुराल बिदा करती वैसे ही भइया भी टीका लगाकर शगुन देकर मुझे बिदा करते ।

—पर हम सबके मन में एक ही इच्छा थी कि किसी तरह भैया का घर बस जाये ऐसी भाभी आये जो मेरे इन तीनों भाइयों को सँभाल सके और ईश्वर ने वह दिन आखिर दिखा ही दिया था ।

मुझे अभी भी अच्छी तरह याद है—मेरे अम्मा बाबूजी ने बड़े चाव से मुन्नु भइया की शादी रचाई थी । सालों से दूर दराज लड़की देखते देखते भइया को उसी शहर में रमा जैसी दुल्हन मिल गई थी जो पढ़ी लिखी और समझदार थी । चार दिन पहले से ही घर में ढोलक पर घोड़ी और बन्ने गाये जाने लगे थे । हम चारों बहनों ने आरती करके दुल्हा बने भइया को बिदा किया था और जब भाभी को लेकर कार से उतरे थे आरती करके द्वार घेरकर हमने भैया से जम कर नेग लिया था । भइया मुस्कराते रहे थे और जेबें खाली करते रहे थे । फिर वो शुभ दिन भी आया था, जब एक के बाद एक भइया के आँगन में दो नन्हें सुन्दर फूल खिल उठे थे जिन्होंने भइया के जीवन में एक नये उत्साह का संचार किया था, उमंगों से भरपूर भइया ने बड़े उत्साह से हमें रोक कर छठी पूजा कराई थी ।

याद आती है—वह बात भी, जब भाभी ने एक बार हँसते हुये कहा था—

"एक बेटी हो जाये तो अच्छा है, कम से कम भइया का राखी बांधने वाली एक बहन तो चाहिये ही"

पर भइया झट से बीच ही में बात काट कर बोले उठे थे —

"क्या जरूरत है ? क्या हमारे सगी बहन थी ? पर इन बहनों को पाकर कभी हमने बहन की कमी अनुभव नहीं की। वैसे ही ये भी कभी कमी महसूस करेंगे, और भाइयों के लड़कियां है, वे ही राखी बांधेगी वही करेंगी टीका

—आज भइया इस संसार में नहीं है, उनके जाने के दो मास पश्चात नन्ही गुड़िया ने इस संसार में अपनी आंख खोली है। क्या बीती होगी भाभी के दिल पर ? उस समय भाभी के गर्भ में नन्हा जीव पल रहा था। चार वर्ष ही तो हुआ था भइया के ब्याह को। इन चार वर्षों में ही भइया ने भाभी पर इतना संचित प्यार लुटाया था कि वर्षों साथ रहने के बाद भी लोग उससे वंचित रहते है। रमा भाभी को आज भी याद है—"मां ने कितने भरे मन से बेटी को ससुराल विदा किया था। भइया स्टेशन तक पहुंच ही न सके थे रास्ते में ही उनकी तबीयत खराब हो गई थी। हॉस्पिटल में इतनी दौड़ धूप करने के बाद भी रानी भाभी के सामने देखते ही देखते भइया ने प्राण त्याग दिये थे। उस दिन अस्पताल आने से पहले हड़बड़ी में रमा भाभी ने अपनी मांग में जो सिन्दूर भरा था किसे पता था कि वो अन्तिम बार मांग भर रही है, फिर जीवन पर्यन्त इस मांग को रिक्त ही रहना पड़ेगा। सब ठगे से रह गये थे। भइया की मौत ने सबको अन्दर तक झकझोर कर रख दिया था। उन छोटे भाइयों को तो और भी अधिक जो अम्मा बाबूजी के न रहने पर एक दिन भी अलग न हुए थे, जिन्होंने सुख –दुःख, आंधी-तूफान, मुश्किलों–परेशानियों को एक साथ मिलकर झेला था उनका दीवार और दरवाजों से सिर टकरा कर रोना उनके हृदय की पीड़ा को और भी व्यक्त कर रहा है। सबसे छोटे उस गुमसुम से रहने वाले भइया ने बड़े भइया का अन्तिम सस्कार बड़ी निष्ठा और श्रद्धा से किया है, क्योंकि उसे मालूम है कि भैया हर सस्कार बड़ी श्रद्धा से करते थे। सब कुछ जलकर समाप्त हो गया है, केवल रह गई है, ढेर सारी स्मृतियां।

आज लिफाफे में राखी डालते समय हाथ रूक गये हैं, अब वह चौड़ी, कलाई उभर कर सामने नहीं आयगी। कलशी पर भाई दूज का टीका काढ़ते हुये हाथ सहसा ठिठक गये हैं उस चौड़े मस्तक वाले भइया की स्मृति क्या कभी हृदय से विस्मृत की जा सकती है, कभी नहीं कभी नहीं।

रेत मे दबा अस्तित्व

हाथो मे ढेर सारे प्लास्टिक के आसमानी भूरे काले पाटल, धूल म लोटता ओढना, नीचे जमीन मे घिसटता घाघरा पहन, चेहरे पर बिखरे हुये तेल रहित छोटे छोटे बाल हाथो म छोटा सा झोला लिय उसे रास्ते म, गली मे, चौराहो पर कही भी देखा जा सकता था। आस पास के मोहल्ला के लोगो के लिय वह कोई अपरिचित नही थी। सभी उसके जीवन क पूव इतिहास से परिचित थ अपरिचित थी तो केवल मैं, क्योकि मैं वहा नई नई आई थी। पर इतने पर भी मेरे और उसके बीच करुणा और स्नेह का सतु किस प्रकार बनता गया इसे मैं समझ नही पाई।

—लोग कहते कि इसका भी भरा पूरा परिवार था। सात बेटो की मा थी यह पर एक - एक कर सब खतम हो गय थे और अपनी विसगता का दु ख भोगने के लिये वह इस ससार मे निपट अकेली बची थी, शायद उसी दु ख ने उसे अध विक्षिप्त या पागल सा बना दिया था। जब वह रास्ते मे चलती तो बच्चे उसे पगली पगली कह कर पीछे लगते कोई उसका झोला खीचता कोई ओढने का छोर पकडता, उस समय वह खडी होकर गाली निकालने लगती और कहती—

थार बाप ने रा, थारी मा न रो

म्हाने पगली कहे है हु पागल कोऽनी

वह बडे बडे लोगो के घर मे जाकर बरामदो म बठ जाती शात भाव से आगन मे बठी रहती, खाली एक मिनट भी नही बठती, किसी के यहा गेहू साफ करती मिर्ची कूटती, धनिया कूटती और लोग भी उसे बडे प्रेम पूवक रोटी खाये बिना जाने नही देते थे। कभी वह रोटी खाती, कभी नही खाती और रोटिया को थले म डाल लेती और कहती—

'अबार भूख कोनी, पच्छे घर जाऽर खास्यू

वह चाह कितनी ही भूखी रहती पर कभी भी किसी से यह नही कहती कि "म्हाने जीमण घाल दे" बल्कि जब घर मे लाग भोजन करत रहते और वह पहुच जाती तथा उसे भोजन करने के लिये कहा जाता तो कहती—

—पहने ये जीम लो,उपर मी जणे हु जीम नेस्यू अबार पेट भरिया है—

सब लोग उसे स्वीकार भी इसीलिय करते थे कि वह चाहे कितनी ही तकलीफ मे क्या न हो पर किसी का एक पैसा छूना भी पाप समझती थी। अगर किसी का रुपया पैसा झाड़ू लगाते समय उसके हाथ लग जाता तो वह उसे संभला देती और कहती—

—बाई जी थारा रुपिया माथ ला अटठे पडिया या चाखी तरह सामतिया पच्छे म्हान दा कोनी—

वह अक्सर मिठाई की दुकान के सामने जाकर खड़ी हो जाती पर मुह से कभी भी नही कहती कि उसे क्या चाहिये? बाजार मे सारे दुकानदार उसे अच्छी तरह जानते थे। वह यह भी जानते थे कि वह कभी हाथ फैलाकर किसी से कुछ मागेगी नही। फिर वह स्वय ही उससे पूछ बैठते—

— रामी बुआ तू काइ खासी—

वह मुह से कुछ न बोलकर हाथ से इशारा भर कर देती और दुकानदार उसकी मनचाही मिठाइ झोले मे डाल देता। और सच पूछो तो उसका झोला भी क्या था पूरा भानुमती का पिटारा था। वह जिसके घर जाती वही पर अपने थैले म से सामान निकाल कर बिखेर देती। उस झोले मे धन वैभव से पूर्ण कोइ वस्तु नही थी पर उसका छोटा सा रंग-बिरंगा ससार उस झोले मे समाया हुआ था। रगीन पाटले, फूटे— हुये कप और गिलास, कुछ बिस्कुट, मोटी भुजिया एव दो लाल पीले रग के ब्लाउज यही सब कुछ रामी बुआ के उस छोटे से थैले मे सिमटे हुये थे। इतने पर भी वह सबके लिये उदारता का भडार खुला रखती थी। कोइ उससे कुछ भी मागता, भले ही यह माग उसे चिढाने के लिये हुआ करती थी पर रामी बुआ झट से कह देती—

— हा थे न ला म्हार खने घणा ही पडिया है—

इतना सब कुछ होन के बाद भी लोग उसे नाम की बावली न समझ कर सचमुच बावली समझते थ पर मैंने न तो उसे कभी पगली समझा और न कभी उसके व्यवहार स मुझे उसके पागल होने का अहसास हुआ इसके पीछे शायद यही कारण था कि मैंने बावली के व्यक्तित्व मे एक ममतापूर्ण नारी की छवि को देखा था, उस स्नेह सलिला का प्रवाहित होते देखा था जो उसके सात बेटो की मौत के उपरात भी उसके हृदय से सूख नही गइ थी।

एक सुबह [illegible] अवस्मात [illegible] सब [illegible] गइ घर म [illegible] भी न था, मैं बिलकुल अकेली थी। खासी के कारण मुझे चैन नही पड रहा था,

उल्टा करते करते मेरी जान निकली जा रही थी उस समय उसने व [illegible] हाथ फिरती रही तो मेरे सिर और कमर पर फिरते रह इसका मुझे पूरा ध्यान नहीं, हाँ रात घिरते देख मैने उससे इतना जरूर कहा—

—रामी बुआ तू अब घर चली जा, रात होने लगी है, थोड़ी देर में अंधेरा घिर जायगा फिर तेरे को दिखाई भी कम पड़ता है—

पर वह मेरे पास ही बैठी रही मेरे बार-बार कहने के बाद भी वह अपनी जगह से हिली नहीं बल्कि यही कहती रही—

नहीं बाई जी ये एकला हो,

थारा शरीर ठीक कोनी,

मैं थाने छोड़ कीकर जा सकू हूँ

म्हान जाणे वास्ते मत कहो बाई जी,

हू थारे कन्ने बैठी हू।'

मैं भी उसकी इस जिद के आगे हार मानकर लस्त होकर पड़ गई वैसे उस शून्यता में उसकी उपस्थिति से एक सुखद अहसास तो मुझे हो ही रहा था और आखिर वह तभी घर गई जब घर पर लोग आ गये और मुझको औ लोगो ने संभाल लिया।

इस संसार में सारे रिश्ता नातो के हुये भी कभी कभी बावली अपने को बिलकुल अकेली समझती थी अक्सर वह कहती

म्हारी चाकरी कूण कर सी—

— पर मनुष्य कुछ सोचता है ऊपर बैठा विधाता कुछ और जाल बुनता है। मैं ही कब जानती थी कि अब की गर्मियों की छुट्टियो में जब बाहर से लौट कर आऊंगी बावली मुझे देखने को नहीं मिलेगी। बहुत दिनों तक मेरी आंखें उसे गली में सड़क पर तलाश करती रहीं पर जब कहीं भी दिखाई न पड़ी तो मैंने उसके बारे में पड़ोसियों से पूछा उनसे उसके दु:खद अंत की जो गाथा सुनी उससे मेरा रोम रोम अन्दर तक आर्द्र हो उठा—

—वह जून मास का सबसे गर्म दिन था। सब घरों में आराम कर रहे थे पर वह धूप में ही घर से निकल पड़ी, और जंगल की ओर चल दी, चलती गई

एकाएक तेज आंधी आई, आंधी भी ऐसी धूल से भरी काली पीली, जिसमें हाथ को हाथ भी दिखाई न दे उसी में बावली रास्ता भूल गई, भटक गई बावली उन रेतीले टीबों में। रात भर 'सँ – सँ' आंधी चलती रही, किसी डरावने दु:स्वप्न की तरह सवेरे जब सब शान्त हुआ तो बावली का सम्पूर्ण अस्तित्व उन रेतीले टीबों में दफन हो चुका था और प्रकृति ने अपनी आत्मीयता के उपहार स्वरूप उसे रेत की मोटी चादर से ढक दिया था।



सिमटता दर्पण

टीन से आटे का कटोरा निकालते - निकालते हाथ सहसा ठिठक गये हैं। शहनाइयो की गूज कानो के पास गूजने लगती है, यह तो वही कटोरा है, जो नानी ने मात मरते समय बादाम, मेवा, मिश्री, से भरकर दिया था, यही तो निशानी उनकी बची है मेरे पास। मेरी विदाई के समय का स्नेहित स्पर्श जिसकी अनुभूति आज भी मेरी अन्तरात्मा मे जीवित है मन का कोर कोर आसुओं से भीग उठता है, कानो मे वही चिर परिचित फटकार सुनाई पडने लगती है—

— अरे कहा जा कर मर गई बिट्टी, कब से थाली मे खाना परोसा पडा है,

पर तू खेल में ही लगी हुई है,

—इतनी बडी हो गई हर समय लडको के साथ खेलती रहती है,

अरे उन्हे तो यही रहना है पर तुझे तो पराये घर जाना है—"

नानी जोर - जोर से बडबडाये जा रही थी, वैसे तो वह बिट्टी को बहुत प्यार करती थी हर समय अपनी आखो के सामने देखना चाहती जरा सी देर भी उनकी निगाहो से ओझल रहने पर सारा घर सिर पर उठा लिया करती थी कि—

"तू तो बिट्टी को बिगाड कर ही दम लेगी '

—पर सच तो यह है कि अपने लाड प्यार से मुझे सिर पर नानी ने ही चढा रखा था। वह सामने बैठकर घटो मुझको निहारा करती और बार बार एक ही बात कहती—

—गगा की ओर अकेली मत जइयो, लडकी की जात है जमाना ठीक नही, कल को क्या हो कोई ठिकाना थोडे ही है —

—लेकिन मैं जिद ठान लेती— "क्यो नानी तुम हम वहा जाने से बार बार क्यो टोका करती हो, बताओ न क्या वहा कोई भूत रहता है ? नानी कहती—

—तू नही जानती रे, वहा एक सिद्ध साधु का श्राप लगा है साल मे एक बार गगा जरूर बलि लेती है, आज के पढे - लिखे लोग भले ही इस पर

विश्वास न करे पर यह घटना आज भी सच है, जितनी पहले थी"—

हमारी उत्सुकता का बांध टूट पडता। चारो ओर से नानी को घेर कर हम सब भाई बहन बठ जाते और कहते—नानी पूरी बात बताओ न, क्या हुआ था ? सिद्ध साधु ने क्यो श्राप दिया था ?

हमारी इस जिद ने नानी को दूर अतीत के आइने मे झाकने को विवश कर दिया और नानी सिमटी स्मृति की पर्तों को उधेडते हुये कहने लगी—

—मैं उस समय नई नई ब्याहता आई थी, तुम्हारे नाना को नदी किनारे का यह पलाट बहुत पसद आया था, जहा तुम लोग आज बठे हो। इस जगह को पहली बार देखकर ही तुम्हारे नाना का मन रम गया था। आस पास के लोगो ने बहुत मना किया था कि यहा हर साल बाढ आयेगी, परेशानी उठानी पडेगी पर नाना ने यहा मकान बनाने का विचार पक्का कर लिया था। वे विश्वविद्यालय मे काम करते थे। मकान बनना शुरु हो गया था।

विश्वविद्यालय से गगा जाने का रास्ता हमारे घर के सामने होकर जाता था। झुड के झुड विश्वविद्यालय के लडके हर राज गगा जी मे नहाने और तैरने के लिये जाया करते थे। उसी घाट पर एक साधु महाराज गगा के बीचो बीच ऊँचा मचान बनाकर रहा करते थे। एक दिन वो पूजा मे बठे थे, तभी शरारती लडको का झुण्ड आया, और उनको परेशान करने लगा बार बार लडके तरते हुए आते और उनके ऊपर पानी उछालते, उनकी हँसी उडाते, अब मे तग आकर साधु महाराज ने आखे खोली और कहा कि—

"तुम लोग इस तरह मुझे परेशान कर रहे हो, मैं तुम्हें शाप देता हू कि तुममे से कोई न काई लडका साल मे एक बार जरूर यहा डूबेगा।"

आज वो साधु नही है, पर उसका दिया शाप आज भी बेकार नही हुआ है। यह काशी नगरी है जहा का ककड भी शकर है। यह बम भोले का दरबार है।

यह कहते कहते नानी भाव विभोर हो उठी, श्रद्धा से उसके दोनों हाथ जुड से गये थे,

रात बहुत हो चुकी थी, हम सब भाई बहन उनके आस - पास लुढक चुके थे।

बसन्ती नानी के इस घर मे ही हम लोगो का बचपन बीता था। बाबूजी ठहरे

सरकारी नौकर, अक्सर दौरे पर रहते, पढ़ाई के कारण विश्वविद्यालय पास होने के कारण मा हम लोगो को लेकर वही रहा करती थी। गगा म बाढ का आना तो हर साल का नियम था, किनारे वाला घर जो ठहरा। जब बाढ आती और विकराल रूप धर लेती तो हम लोगो को मकान छोडकर दूसरी जगह जाना पडता पर नानी घर छोडकर कही न जाती, भला जाती भी कैसे, इसी घर म तो उनके मन प्राण बसे हुये थे। नाना के न रहने पर उनकी एक मात्र निशानी म यह घर, जिसको उन्होने बडे चाव से बनाया था, उसी घर मे सम्पूर्ण परिवार फला फुला था, बच्चे छोटे से बडे हुये थे। दोनों बेटियो के ब्याह म कैसा ठाठ - बाठ सा रचाया था, उन्होंने रास्ते भर रुपयो की बौछार की थी, साक्षात विश्वनाथ जैसे दामाद उन्हें मिले थे। अपने सारे अरमान उन्हाने जम कर निकाले थे, पर घर बनने के बाद नाना बहुत समय तक जीवित न रह सके थे, उनके पैरो को लकवा मार गया था। विश्वविद्यालय के अस्पताल मे इलाज करवाने के बाद भी उन्हें बचाया नही जा सका था।

—कैसा हा–हाकार मच गया था, सारा निर्माण काय जस का तस पडा रह गया था।

—नाना ओवरसियर जो थे, सब जगह शोक की लहर फैल गई थी सारा विश्वविद्यालय शोक मना रहा था। नानी के दुःख का पारावार न था।

—अपने दोहिते की अधूरी साध लिये नाना इस दुनिया से चले गये थे।

उसके साल भर बाद जब मुन्नु भइया का जन्म हुआ तो मौसी को ऐसा लगा—जैसे सौरी घर मे नाना उनके सिर पर हाथ फेर कर जा रहे हैं। शायद उनकी अतृप्त आत्मा कही आस - पास ही भटक रही थी। उसके बाद फिर कभी वो सपने मे भी नही दिखाई दिय।

—पर एक बार जब बाढ ने भयकर रुप धारण कर लिया और ऐसा लगा कि अबकी बार यह घर बाढ की लहरो को सहन नही कर पायगा। तब बसती नानी के लाख मना करने के बावजूद भी बडके भया ने हलकी फुलकी सी नानी को गोद मे उठाकर नाव पर चढा दिया था। दूसरी जगह जाकर हम सब भाई बहन तो खेल मे रम गये थे। मा रसोई बनाने की तैयारी म जुट गई थी, पर नानी का मन अपने घर मे ही अटका रहा, बार - बार एक ही रट लगाती—

— 'चल मुन्नी, एक बार घर देख आये, कही कोई दीवार तो नही गिर गई कही चोर कुछ उठाकर तो नही ले गये"

—जाने का मन न होने पर भी नानी की बात तो रखनी पडती । चारो ओर पानी ही पानी कमर तक पानी मे चलकर मैं और नानी घर पहुचते है, पर यह क्या सीढियों से अन्दर जाने का रास्ता रुक गया है, किसी तरह दुमजिले पर खिडकी के सहारे चढकर छत से आगन मे कूद पडती हू । नानी बडबडाने लगती है—

"अरी तुझे इस तरह ऊपर से नीचे कूदने को किसने कहा था ? अगर तू हाथ पैर तुडा बैठी तो तेरे से शादी कौन करेगा"

—वही नानी के गले मे बाहे डालकर झूल जाता ।

"अरे नानी तुम्हें छोडकर कौन जायेगा ?"

चारो और अथाह जल राशि, निजन टापू जैसा घर और नानी की गोद म सिर छिपाये मुन्नी का मन आज भी अन्दर तक भीग सा उठता है । नानी के सिमटे सिकुडे झुर्रियो भरे हाथ देर तक मेरे सिर पर फिरते रहे ।

—अपने जीवन के अतिम वर्षों मे नानी किस प्रकार परवश हो गई थी इसकी व्यथा क्या शायद हो कोई समझ सके ।

एक के बाद एक अपने निकटतम सबधियो की मौत से नानी को भावा-त्मक ठेस लगी थी, यह कही दूर अन्दर तक चिटखती सी चली गई थी ।

हर बार उनके दिल पर खरोच अपनी लकीर छोडती गई । पहले बडे दामाद की मौत और उसके कुछ ही साल बाद बडी बेटी की असामयिक मौत ने नानी को झकझोर कर रख दिया था ।

नानी पक्षाघात का शिकार हो गई थी । उनके हाथ पैर बिलकुल बेकार हो गये थे । दिन रात बिस्तर पर पडे-पडे ऊब जाती, आवेश मे आ जाती, अपने बालों को नोचने लगती, ऊट - पटाग बकने झकने लगती, भगवान से मौत की भीख मागती और एक ही वाक्य बार बार दुहराती

—क्या यही दिन देखने के लिये मैं जिन्दा हू ? हे भगवान, मुझे मौत दे दे"—

पर क्या कभी मौत भी मागे से मिली है । देह का भोग तो उन्हें ही भोगना था ।

—मा छाया की तरह हमेशा उनके साथ रहती। अक्सर नानी चिड़चिड़ा कर गुस्से मे आकर दवा नही खाती तो मा के धीरज का बाध नही टूटता, कितनी मानसिक और शारीरिक यत्रणा सही उन्होने अपने अतिम समय मे।

—आज जब उनकी मृत्यु का समाचार मिला तो बहुत देर हो चुका है। समय पर समाचार नहीं मिला कि उसे पुराने घर म जहा बचपन बीता था, जाकर दो बूद आंसु बहा सकू। छुट्टिया म जाने पर उस घर की बिना रेलिंग सीढ़ियां चढते समय बार बार नानी का निस्तेज चेहरा अतीत के आईने म सिमट कर रह गया है। नानी का झुरियो भरा चेहरा सामनेआता है, आखो से आसुओं की धारा बहने लगती है।



अभिशापित

आज तीन दिन के बाद घेटू घर लौटा है, पता नहीं बेचारा कहाँ - कहाँ भटकता रहा है। बार-बार माँ की आँखे पनीली हो उठती है, बाबू कहते कुछ नहीं, सिर पर गमछा लपेटे उसे गाँव की गलियों में खोजते रहते रहे हैं। सबेरे से उसने कुछ खाया भी है या नहीं कौन जाने? जब घर पर ही भूखा प्यासा पड़ा रहता था तो बाहर बिना जाने माने उसे रोटी कौन खिला देता ? घर आते ही घेटू को नहलाया धुलाया गया है सो भी जबरदस्ती, घेटू के सारे कपडे मिट्टी, कीचड़ से सन है, न जाने नहीं कितनी लम्बी यात्रा करके आया है,थाली परोसते ही घेटू उस पर ऐसे टूट पड़ा जैसे पता नहीं कितन दिनो से भूखा था। माँ बार - बार कहती रही—

अरे घेटू थाडा धीरे धीरे रोटी खा, इतनी जल्दी जल्दी क्यो हाथ चला है ? " पर घेटू ने थाली भी एक हाथ से कसकर पकड़ रखी है कहीं कोई परसी हुई थाली उसके सामने से खींच न ले और जैसे वह तीन दिनो से भूखा मर रहा है वही भूख आज भी निकालनी पड़े।

—घेटू को घर म रखन के लिये न जाने कितने - कितने उपाय किये थ, मन मे यही डर बैठा हुआ था कि घेटू अगर घर से बाहर निकल गया तो जगल में कही रास्ता भटक जायेगा और उसका वापिस घर लौटना मुश्किल हो जायेगा।

—उस दिन जब दोपहरी मे गया घेटू आगे ही आगे बढ़ता जा रहा था तो हैडमास्टर साहिब ने स्कूल से निकलते समय उसे देख लिया था।

—मई का पहला सप्ताह था धरती ऊपर से नीचे से दोनो तरफ से तप रही थी।

—वार्षिक परीक्षा के बाद बच्चो की छुट्टी हो गई थी और स्टाफ के लोग परीक्षा-फल तैयार करने मे लगे थे।

बारह बजे छुट्टी होने पर जब हैडमास्टर साहिब घर जा रहे थे उन्होने देखा कि घेटू इतनी धूप मे पसीने से नहाये जगल की ओर रहा है।

स्कूल गांव के अन्तिम छोर पर था, वहां से जंगल की ओर पगडण्डी जाती थी। हैडमास्टर साहब घेटू को तथा उसके बाबू को अच्छी प्रकार जानते थे। बहुत पुकारने पर भी घेटू रुका नहीं था, चला जा रहा था तब हैडमास्टर साहब ने लपक कर उसे पकड़ लिया था। उस समय उनके बूढ़े हाथों में न जाने कहां से इतनी शक्ति आ गई थी? उससे पहले वे उस जंगल में घुस उन दो लड़कों का हश्र देख चुके थे, जो भूख - प्यास से तड़प - तड़प कर उस जंगल में ही समाप्त हो गये थे। वे नहीं चाहते थे कि ऐसी ममस्पर्शी घटना की फिर पुनरावृति हो। इसलिये वे जबरदस्ती घेटू को अपने साथ पकड़ कर घर ले आये और घेटू के बाबू से कहा—

—"इसे बांध कर रखो, बाहर मत जाने दो, कहीं रास्ता भटक गया तो भूखा प्यासा जंगल में प्यास से तड़पता दम तोड़ देगा?"—

—उसके बाद कई दिनों तक उसे सेजड़ी से बांध कर रक्खा गया। बांधा भी किससे गया उस लोहे की जंजीरों से, जिससे गाय डांगर बांधे जाते हैं। वह कोई पशु तो नहीं था उसे इस तरह सांकल से बांधकर रक्खा जाये। पर घेटू तपती दोपहरी में भी दिन रात लोहे की जंजीरों से जकड़ा रहता उसके शरीर में जगह - जगह सांकल की रगड़ से घाव हो जाते, उसे देखते डर लगता। घेटू की आंखों की पुतली चौड़ी होकर भयावह रुप धारण कर लेती, वहीं पर उसे चाय, दूध, दवा सब चीजें दी जाती। घर के सारे बच्चे उसे घेर कर ऐसे बैठे रहते जैसे सकस का कोई अनोखा अजूबा प्राणी हो। घेटू हर आने - जाने वालों के हाथ जोड़ता, आंखों में अनुनय विनय लिये, हर एक के साथ अपना रिश्ता जोड़ता, खोलने की प्रार्थना करता और कहता रहता—

"मा म्हने, एकर खोल दे, —मौसी म्हाने एकर खोल दे,'

काकी म्हाने एकर खोल दे"

—पर उसे खोल कर आफत कौन मोल लेता। सांकल खुलते ही तो वह सारे घर में उथल पुथल मचा देता। उस दिन जरा सा जेठ जी का आग्रह मान कर छोटे भाई की बहू ने सांकल खोल दी थी, तो घेटू ने सारे घर को उलट पुलट कर रख दिया था। दूध दही सब गिरा दिया। रसोई घर से अपने आप रोटियां उठाकर सबको बांट दी। घर में बहुत सी गायें थी, उसने उनके बछड़ों को खोल दिया और बछड़े गाय का दूध चुंग गये। शाम के समय जब दुहारी का समय हुआ तो गाय के दूध से बालटी चौथाई ही भर पाई। तब मालुम पड़ा कि घेटू ने सब बछड़ों को खोल दिया और वे सटासट दूध चुंग गये थे। पता नहीं उस पगले

के ग्लि म पशुआ के प्रति ममता का यह स्रोत कहा छिपा था कि बछडा को भी भरपूर दूध मिलना चाहिये ?

—जब पेटू का दिमाग ज्यादा खराब होता तो वह रातभर नींद भी नही लेता, सारे दिन घर मे नाचता - कूदता, जरा सा घर वाला की नजर चूकते ही घर से बाहर निकल जाता । कभी कभी चौराहा पर कपडे उतार कर नाचने लगता । लेकिन इतने पर भी पेटू किसी से दुर्व्यवहार नही करता ।

उसे देखकर औरता का भय नही लगता था, क्योकि वह दिमाग खराब होने पर भी औरतो को कुछ नही कहता था । पर दुनिया भर की उल्टी सीधी बातें वह बकता रहता । एक शब्द पकडता तो बार बार वही शब्द दुहराता रहता ।

एक दिन सवरे - सवेर उसको थाडा कम दूध पीने को मिला तो उसने कटौती शब्द पकड लिया और उस शब्द को एसा पकडा कि सारे दिन कटौती-कटौती ही करता रहा

—"खाने म कटौती पीने मे कटौती, कपडे म कटौती, दूध म कटौती, आ कटौती काई चीज हुवे है, म्हाने समझ पडी कोनी ? '—

पता नही ईश्वर न उसके दिमाग की मशीनरी म क्या कटौती कर दी थी कि अनेक डाक्टरो से इलाज कराने के बाद भी वह ठीक नही हुआ था ।

कुछ महीना के लिये उसे राची के म टल हास्पिटल म भी रक्खा गया था पर वहा उसका दिमाग और खराब होता गया था । घबराकर घर वाले उसे वापस ले आये थे ।

लेकिन पटू हमेशा पागल जसा आचरण नही करता, साल के कुछ महीना म ही उसे पागलपन का दौरा पडता, शेष समय म वह मेहनत मजदूरी करता है, अपनी गायो को सभालता उन्ह चारा देता, पानी पिलाता, सबके घर बधी का दूध देकर आता ।

महीने के शुरु मे उनसे रुपया की उगाही करके लाता, बाजार म गाडा खीचता, बारिया को गाडे पर लादकर लोगा के घर पहुचाता, रोज बीस पच्चीस रुपया मजदूरी करके लाता पर माँ और बाबूसा को छोडकर किसी के हाथ म रुपय नहीं देता । मागने पर पराया धन पराया धन कहके अपना पीछा छुडा लेता है ।

घट्टू क घर वाल भी कम दु खी नही। ईश्वर पर उनकी बडी आस्था है पर पता नहीं, ईश्वर न उन्हें यह दु ख क्या दिया ? उनकी आखा क सामन उनका बटा सिर धुनता रहता है, पर वे कुछ नही कर सकते कोई उपाय नहीं इसके सिवाय कि उस बांध कर रक्खा जाय। घट्टू की बातें चलत ही उनका गला रु घ जाता है, आंख भर आती है और व अतीत के उन सायो म खो जाते हैं

जब घेटू के सिर पर भी सेहरा बधा था। एक ही घर म घेटू और उसके बडे भाई का ब्याह हुआ था। वे दो बहन थी और य दो भाई। उस समय घेटू मुश्किल से पन्द्रह बरस का रहा होगा। कितन भले लग रह थे दोनो भाई, जैसे साक्षात राम लक्ष्मण की जोडी उन्ह देखते ही आंखे जुडाती थी।

अक्षय तृतीया का शुभ मुहुत था विवाह का, शायद इसलिय कि विवाह का यह बधन अक्षय रहे। दोनो भाई चाद सी दुल्हने लिय घर लौट रहे थे। और घर के सभी लोग उनके स्वागत के लिये उमड पडे थे। सब काम बडी ही अच्छी तरह सम्पन्न हो गया था पर पता नही दूसर दिन से ही घेटू गड बड करने लगा।

ज्यादा दिमाग खराब होने पर उसकी छोटी उम्र की दुल्हन को भी उसके सामने आने म भय लगता। कितनी बार घर वालो न कोशिश की कि घेटू अपनी उस नई नवेली बहू से एक बार मिल ले, शायद उसकी प्रणय धारा म डूबकर घेटू पागलपन से उबर जाये, उसका मस्तिष्क ठीक काम करने लग पर सब व्यथ हुआ। दुल्हन के सामने पडते ही घेटू पत्ते की तरह कापने लगता।

कुछ दिन तो वह भी घर मे आती जाती रही। सामजस्य बठाने का प्रयास करती रही पर धीरे - धीरे उनके रास्ते अलग होते गये।

उसके जीवन मूल्य बदलत गय और उसन अपनी दुनिया अलग बसा ली।

पर घेटू के अवचेतन मस्तिष्क मे अभी भी उसकी तस्वीर बरकरार है, उसका नाम आते ही वह चीख चीख कर आक्रोश प्रगट करता है, उल्टी सीधी गाली निकालता है।

लकिन घटू अब अकेला रह गया है उसके साथ ब्याहे भाई का परदेश म अच्छा खासा कारोबार जम गया है, लडके बच्चे बडे हो गये हैं, जल्दी ही घर म उनके ब्याह की धूम मचेगी पर घेटू हमेशा अकेला ही रहेगा और रहेगा नि सग।

गाय गोरू के बीच बैठा खेजड़ी से बंधा, आशा में याचना लिये हर आने जाने वाले से हाथ जोड़ कर कहता रहेगा—

"माँ म्हान एकर खोल दे,

मौसी म्हान एकर खोल दे।" —भाभी म्हाने एकर खोल दे"

●

आत्मग्लानि

कभी – कभी सोचती हू कितना अनर्थ हो जाता उस दिन अगर मैं जमुना के ऊपर चोरी का दोष लगाकर उसे पुलिस के हवाले कर देती । आखे लाल-पीली करके बच्चो से भी कई बार पूछा था उसके घर की तलाशी लेने तक की मैंने ठान ली थी, न जाने कितनी अनाप-शनाप बातें उसके बारे मे कह डाली थी-

' बड़ी सती सावित्री बनी फिरती है, अरे ! मुझे तो पहले से ही पता था, ये काम करने वाली औरतें पहले भलमनसाहत का ढोंग रचती है बाद मे बड़े बड़े माल पर हाथ साफ कर देती है"—

—पर मेरे इतना कहने पर भी मेरे पति के धीर गम्भीरस्वभाव मे तनिक भी अन्तर नही आया था, वो बार-बार यही कहते—

"शायद मने भूल से कही रख दिया हो"

मामला तूल न पकड ले मेरा गुस्सा उग्र रूप धर के कही किसी के भविष्य का अंधकार मय न कर दे, शायद इसीलिये वे बार-बार यह वाक्य दुहरा रहे थे —

"पहले अपने घर मे हर तरफ देख लो बे वजह किसी पर शक करना ठीक नही '

—शायद वो इस बात को भी जानते हैं कि अगर चीज वापिस घर मे ही मिल गई और जमुना निर्दोष ठहराई गई तो आत्मग्लानि के कारण मेरे आसुओ का इतना अधिक सैलाब बहेगा कि उसे रोकना मुश्किल हो जायगा ।

—मैं भी कभी-कभी स्वय अपने से ही प्रश्न पूछती हु,

—आखिर एसा क्या होता है ?

—क्यो हम छोटी जात वाला को इतनी जल्दी सदेह के घेरे मे ले लेते है ?

—क्यो घर में चोरी होने पर पहले दोष उन्ही पर लगाते हैं ?

—शायद इसलिये कि उन्होंने निम्न कुल में जन्म लिया है, पर यह कोई पाप तो नहीं है, यह ऊंच-नीच की दीवार तो स्वयं हमने खड़ी की है।

—असल में देखा जाये तो बात कुछ भी नहीं थी, यहीं दीवाली का त्यौहार था। घर में नाते रिश्तेदारों का आना-जाना लगा हुआ था। गादरेज की अलमारी में से निकाल कर पहनने के लिये गहने रक्खे थे और सब तो पहन लिये थे पर हाथों से पकवान के लिये आटा गूंधना था इसलिये व्यस्तता में कंगन पहनने का समय ही नहीं मिला। संध्या को जब कहीं बाहर जाने का प्रोग्राम बना तो कंगनों की याद आई।

—मुझे ठीक याद था, मैंने ड्रेसिंग टेबिल पर ही कंगनों की जोड़ी रक्खी थी, पर वहां से कंगन नदारद थे, घर में आये गये सब विश्वस्त थे, मेरा ध्यान बार-बार जमुना की ओर जाता, वही इस कमरे में सफाई करने के लिये आई थी, उसके सिवा दूसरा कोई कंगन ले ही नहीं सकता, मेरा मन बार - बार उस संदेह की गिरफ्त में ले लेता।

मैं परेशान थी किसी भी काम में दिल और दिमाग नहीं लग रहा था। धीरे - धीरे करते पंद्रह दिन बीत गये कभी सोचती अब क्या होगा?

—अगर नहीं मिले कंगन तो कैसे बनेगी दूसरी कंगन की जोड़ी। गहने तो विपदा के साथी होते हैं, जब अच्छा समय था, तब कितने कम रुपयों में बन गये थे, अब तो महंगाई सुरसा की तरह मुंह बाये खड़ी है, ऊपर से आये दिन के खर्चे—

—सोते समय भी सपने में वही कंगन की जोड़ी दिखाई पड़ती। जहां नजर डालती कंगन ही कंगन नजर आते। दूर से लगता कहीं सोने के कंगन चमक रहे हैं रास्ते चलते किसी को हाथ में वैसे ही कंगन पहने देखती तो कलेजा मुंह को आ जाता। काश कंगन कहीं घर में मिल जाते।

—दिन बड़े तनाव में गुजर रहे हैं जमुना भी काम करने नहीं आ रही थी। उसने कहा था कि

"उसका बच्चा बहुत बीमार है, छत से गिर गया है, उसका हाथ टूट गया है, एक्सरे कराना है, अस्पताल में भर्ती कराना है, कुछ रुपये भी मांगे थे

—पर मैं तो उसके ऊपर भरी बैठी थी। बच्चे की बीमारी को भी उसके नजर चुराने का बहाना समझ बैठी थी, जो आता उससे मैं यही कहती—

"न हा जमुना ने ही कगन लिये है, तभी तो बच्चे की बीमारी का बहाना करके नही आ रही है, आखिर आयेगी भी किस मुह स। अरे ! झूठ के पांव थोड़े ही होते हैं, मेरी ही गलती थी, जो मैंने उस पर भरोसा किया –"

मेरी इन बातो पर लोग आश्चय करते क्योकि जमुना किसी के लिये नई नहीं थी। वह सात बरस से हमारे यहा काम कर रही थी, कभी किसी ने उसमे कोई ऐसा वसा ऐब नही देखा था पर मेरे मन म जो सन्देह का सप उसके लिये घुसकर बठ गया था, उसने अपनी पठ बहुत गहरी जमा ली थी और उसी का विष वमन मेरे शब्दो के माध्यम से व्यक्त हो रहा था।

धीरे - धीरे शीत ऋतु भी अपनी गुलाबी सर्दी को लेकर आने लगी थी, एक दिन जब मैं सर्दी मे पहनने के लिये कपड़े निकाल रही थी और उन्हें धूप दिलाने के उपक्रम मे थी, उसी समय साडियो की तह करते समय अचानक जरी की लाल रग की साडी तह समेत नीचे आ गिरी। तह खुलते ही उसमे सहेज कर रक्खे गये सोने के कगन चमकते दिखाई दिये। एकाएक आखो के सामने सारा दृश्य घूम गया, उस दिन लक्ष्मी पूजन के समय मैंने वही लाल रग की साडी पहन रक्खी थी और जल्दी बाजी मे काम की व्यस्तता मे मैंने ही कगनो को साडी म लपेट कर रख दिया था। आज जब वो कगन मिल गये लगा सारी थकान जाती रही, मन मयूर नाच उठा ओह ! कितनी बड़ी चिन्ता दूर हो गई।

—पर एकाएक मेरी आखो के सामने बार बार निर्दोष जमुना का चेहरा घूमने लगा। उसका बार - बार हाथ जोडते हुये ये कहना—

—बाई जी हू थारो पाटलो लियो कोनी मैं म्हारे टाबर छोरा र माथे पर हाथ धर कहू हु कि हू थारा पाटला आख्या से देख्या ही कोनी ?

—लेकिन मेरे ऊपर उसकी इस विनीत मुद्रा का कुछ भी असर नही हो रहा था मैं उसे लगातार धमकियां दिये जा रही थी। कितना बीमार था उसका बच्चा उसे मर-मर कर नई जिंदगी मिली है और म उसे चोर समझे बैठी थी। इसी गुस्से के कारण मैंने उसे इलाज के लिये रुपये भी नही दिये थे। वह बेचारी काम तो हमारे यहा करती थी। रुपये मागने और कहा जाती ?

—जमुना को अपने बच्चे की जान बचाने के लिये गलत लोगों का साथ देना पडा था क्योंकि रुपये मिलने का यही एक रास्ता बचा था। शायद उसको गलत रास्ते पर डालने वाली मैं ही थी नही तो वह तो जी तोड मेहनत मजदूरी करके अपना गुजर बसर कर ही रही थी।

मै आत्मग्लानि से भर उठी, तकिये मे मुह छिपाये न जाने कितनी देर तक सुबकती रही पति के घर आते ही सबसे पहले मैंने यही शब्द कहे—

—देखो न मुझसे कितनी बडी गलती हो गइ । कगन मैंन ही साडी की तह म रक्खे थे । आज एकाएक आलमारी सहेजते हुये मिल गये मैने उस बेचारी पर बेकार ही दोष लगाया ।"

वे बडी ही सहजता से बोले– अब पिछली बातें भूल जाओ, चलो हम उसके घर चलते हैं, उसके बच्चे को देखकर आयेंगे । उसको काम करने के लिये आने का कहेंगे—

—और वास्तव मे जैसे ही हम उसके घर पहुचे और उसको कगन मिलन की खबर सुनाई तो वह खुशी से गद्‌गद् हो उठी । ऐसा लगा जैसे उसकी खोइ हुइ चीज वापिस मिल गइ है । उसे कुछ भी याद न रहा कि मैंने कितनी खरी खोटी सुनाइ थी उसे । मैंने ही आर्द्र स्वर मे कहा—

जमुना मुझसे बडी भारी गलती हो गई, मैंने तुम्हारे ऊपर दोष लगाया ।"

वह बडी सहजता से बोली—आवण दा बाइ जी, अबे ता मिल ग्या, म्हारी बधाई पक्की ।"

कभी - कभी मैं सोचती हू , अगर उसके स्थान पर कोइ और होती तो उल्टे कितना सुनाती मुझे, कितनी लानते मनानते मिलती, पर जमुना ने सब कुछ बडी सहजता से लिया था ।

उस दिन मैंने सावली सी दीन हीन सी दिखने वाली उस नारी के अन्दर उस निष्कपट आत्मा के दर्शन किये थे, जिसकी ज्योति के आग दीवाली के दियों की चमक भी फीकी पड गई थी ।



आशंका

अर्द्धविक्षिप्त मस्तिष्क बचकानी हरकतें, दण्डमुण्ड काया को लिए इस संसार में उसे तो रहना ही था। विभा हर समय पागलों जैसा आचरण करती, पर काम में चुपचाप लगी रहती, कोई कुछ बोलता तो मारने को दौड़ती, उसको जो भी देखता व्यथा की हल्की सी टीस होंठों से निकल पड़ती—

"बेचारी मूक पशु की तरह दिन भर काम में लगी रहती है'

एक दो बार विभा के बाबू जी ने कोशिश की कि विभा को स्कूल भेजा जाय, शायद चिट्ठी पत्री लिखना सीख जाये, लड़की की जात है, कल को शादी ब्याह होगा ससुराल जायेगी तो अपने सुख-दुःख का समाचार तो दे सकेगी।

वैसे इस बात को वे भी अच्छी तरह जानते हैं कि ऐसी लड़की से शादी कौन करेगा, और अगर करेगा तो वह कौन सी सुखी रह पायगी। पर जब दो चार दिन स्कूल जाने के बाद मास्टर जी ने कह दिया कि—

'पंडित जी— इस लड़की का दिमाग बिलकुल शून्य है यह कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकती।' यह सुनकर विभा के बाबू जी को काठ सा मार गया था।

—समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता उसका चक्र तो अनवरत गति से चलता ही रहता है। विभा के बेबाक से राग से भरे चेहरे पर और सांवली सी काया पर भी यौवन के हरसिंगार फूलने लगे थे। वह बड़ी हो रही थी पर उसे अपने बड़े होने का बोध भी नहीं था।

यह कैसी विडम्बना थी कि जिसके शरीर में बसंत अपने सम्पूर्ण वैभव को लेकर प्रवेश कर रहा हो, उसे ही उसके सौरभ का आभास न हो, पर विभा की वास्तव में यही स्थिति थी। अपने में हो रहे शारीरिक परिवर्तन से माँ ही उसे अवगत कराती, और जैसे उसे रहने का कहती वैसे ही वह रहने लगती।

बाबू जी की चिन्ता का बोझ बढ़ता ही जा रहा था। वे जहां भी जाते उसी के रिश्ते की बात चलाते। लेकिन एक बात जरूर थी वे जहां भी विभा के रिश्ते की बातें चलाते पहले से ही सारी स्थिति बता देते, विभा की मानसिक एवं

शारीरिक कमजोरी की चर्चा करना भी नहीं भूलते, इसके पीछे वह एक ही दलील देते।

"मैं किसी के साथ धोखा नही करना चाहता, आज तो मैं बात छिपाकर विभा को ब्याह दूं बस को सारी जिन्दगी मे सुनना पड़ेगा कि उसके पिता ने धोखे से उसको किसी के गले बांध दिया है, इसे जो भी स्वीकार करेगा उसे समझ बूझ कर परिस्थितियों से– समझौता करके उसको स्वीकार करना पड़गा"

इधर बाबू जी विभा के ब्याह के लिये दौड़ भाग कर रहे थे, क्योंकि विवाह कन्या की नियति है। नही करने पर क्या समाज वाले जीने देते हैं, रोज इधर उधर से बातें सुनने को मिलती—

"जवान लड़की को कब तक घर मे बैठाये रखेंगे, पण्डित जी, आखिर को तो उसके हाथ पीले करने ही पड़ेंगे,

पर बाबू जी का मन हर समय आशकाओं के भवर जाल मे डूबता उतरता रहता—

—क्या विभा विवाह के द्वारा सुखी हो सकेगी, पता नहीं यह अबोध लड़की किसके पल्ले पड़ेगी—

यह बात सत्य है कि मनुष्य कुछ सोचता है और विधाता कुछ और ही रूपरेखा बनाता रहता है। एक रात पता नही क्या हुआ कि विभा रात भर उल्टी करती रही उसे अस्पताल ले जाया गया, शरीर में पानी की कमी हो गई। डाक्टर इलाज म लग गये पर विभा बेहोश पड़ी रही। उसके शरीर पर वही लाल काली धारी की साडी मौजूद थी जिसका आचल जल जाने के बाद मना करने के बावजूद भी वह पहनती आ रही थी। जबकि आचल जली साड़ी का पहनना अनिष्ट का सूचक होता है।

वह जब भी जरा सा होश मे आती अपने हाथो से चूडिया उतार उतार कर फेंकने लगती। अन्त मे उसकी आखो से दो बूद आसु ढुलक पडे और विभा ने सबकी ओर से मुह फेर कर अन्तिम विदा ले ली थी। वह इस ससार की सारी कथाओं व्यथाओं से बाधा बधनों से मुक्त हो गई पर वह सारे परिवार को भी चिन्ताओ से मुक्त कर गई थी।

यह सही है कि सतान माता पिता की आत्मा का अश होती है। इसलिए उसकी मृत्यु पर दुख होना और मां बाप की छाती फटना सहज बात थी पर यह भी गलत नही था कि विभा की असामयिक मौत ने उन्हें उसके विवाह की चिन्ता से मुक्त कर दिया था। उसके कटका क्षीण जीवन की जिस आशका से उनकी छाती काप उठती थी, वह भार अब सदा के लिये दूर हो गया था।

दर्द के रिश्ते

—जब भी सामने वाली गाली मकान की ओर देखती हू मन एक अजीब रिक्तता और कड़वाहट से भर जाता है। दिन - रात यहा पर काम करते हुय उलझे हुये बालो वाली मुख पर अजीब सी उदासी लिए हुए उस स्त्री की छवि को दिमाग से निकालने पर भी निकाल नहीं पाती, जिसे अगर सही परिवेश मिलता, सद्भावना पूर्ण हृदय रखने वाला साथी मिलता तो न जाने यह जीवन की किन ऊचाईयो पर पहुच जाती।

—दो प्यारी - प्यारी लड़कियों और एक बेटे की मां बिनू बड़े अनुशासित परिवार मे पैदा हुई थी। शिक्षा म भी कोई कोर कसर नही छोड़ी गई थी। पति का घर मिला तो वो भी आधुनिक सुख सुविधाओ से युक्त अनाप - शनाप पसा, पति खुला खर्च करते। वैसे वे अक्सर दौरे पर ही रहा करते थे। घर-बाहर दोनों की जिम्मेदारी बिनू को ही समालनी पड़ती थी। उससे इतनी अधिक अपेक्षायें की जाती कि उसका सास लेना दूभर हो गया था, ऊपर से पति का रूखा व्यवहार जब भी घर खर्च के लिये रुपये मागती उतर मिलता —

—इतने रुपये तो घर म देता हू क्या हो जाते है रुपय।

—मैं कोई अपने ऊपर तो खच करती नही बच्चो की पढाई - लिखाई है। घर मे गाय, बकरी, कुत्ते पाल रखे हैं उनके भी तो खाने खिलाने मे खच होता है।"

—पति की नौकरी भले ही अच्छी थी पर बिनू का हाथ हमशा तग ही रहता, यहा तक की उधार तक लेने की नौबत आ जाया करती थी और पड़ोसियों ने भी अपने कल्पना जगत मे उसकी उलजलूल सी मूर्ति बना रखी थी।

आस पास ऐसा परिवेश नही था कि कोई उसकी अन्तर्व्यथा बाट सकता, सभी अभिजात्य वग के लोग थे, केवल रमिया नाम की नौकरानी ही उसकी व्यथा की साझीदार थी। दोनो के कुल के स्तर म गहरा अन्तर होने के बाद भी दाम्पत्य जीवन की रसभीनी फुहार से दोनो ही वचित थी।

बिनू सारा दिन घर म तीनो बच्चो को समालती वय सधि की चौखट

पर यहे उन बच्चा के सामन जब भी कोई समस्या आती वे कातर आखो से मा को ही निहारने लगते थे और जैसे तैसे बिनू को ही उनकी समस्या का समाधान करना पडता था।

उधर रमिया तीनो बच्चा का साथ लिय लिये सारा दिन दूसरा के घरो म काम करती जो भी रूखी - सूखी मिलती बच्चा को खिला देती आप भूखी रहती। जब बिनू अपनी व्यथा का प्याला उसके आगे उडेलती तो वह अपनी नगी पीठ दिखा कर कहती—

'देखा न बीबी जी कितना मारा है उस कमबख्त ने मेरे कू, सारी पीठ पर नील उपड गये हैं। क्या करू एसे मरद का, रोटी भरपेट मिला नही सकता फिर मारता काहे कू है।"

—शायद रात का पति स मार खाना और दिन मे एक दूसरे के जख्मा को सहलाना ही उनकी नियति बन चुकी थी। मगर रमिया पति के द्वारा पीडित होने पर अपनी पीठ के घाव उघाड कर दिखा तो सकती थी चिल्ला चिल्लाकर गाली निकाल कर अपने ऊपर हुये अत्याचारा का ढिढोरा तो पीट सकती थी, पर बिनू को अपनी उपेक्षा से लग आघाता की पीडा को अन्दर ही अन्दर पीना पडता था, क्योंकि वह उस दायरे में अन्दर थी जिसे सभ्रान्त कुल कहा जाता है और जिसे लाघने से ऊँचे स्तर वाला की मर्यादा नष्ट हाती है।

बिनू सोचती है वह बी ए पास है, पढ़ी लिखी है, कही नौकरी करती तो आत्मनिभर तो होती, पैसे मांगन पर पति का झल्लाहट भरा स्वर तो सुनने का न मिलता पर फिर सोचती है,

क्या नौकरी करने पर स्थिति मे अन्तर आ जाता। रमिया भी तो दिन रात खटती है पर कौनसी आजादी मिली है उसे। सच तो यह है कि नारी आर्थिक रूप से भले ही आत्मनिभर हा जाये पर पति उसे मानसिक गुलामी से मुक्त नही रखना चाहता। वह पत्नी के रूप मे ऐसी नारी चाहता है जो आखे रहते हुय भी उसकी आज्ञा का पालन आखो पर पट्टी बाधकर करे, कान सुनने मे अभ्यस्त तो हा पर होठ केवल जी और हा जी का ही उच्चारण कर सके, इससे अधिक कुछ नही।

पर बिनू सदा से ही विद्राही रही है उसने मूक होकर अत्याचारो को सहा जरूर है पर अपने स्वाभिमान को चुकाया नही है। कुछ मामलो पर तो वह भी अड ही जाती है, खासकर बच्चो के भविष्य का प्रश्न सामने आने पर वह

कभी चुप नही रहती। पत्नी के गौरव मय पद की गरिमा उसे सच्चे अर्थों म भले ही प्राप्त न हो पर मातृत्व का गौरव पूण पद वह खोना नही चाहती।

आज रमिया भी अपने परिवार के साथ बहुत दूर चली गई है और बिनू भी यह मकान छोडकर अन्यत्र चली गई है, पर दानो के व्यक्तित्व का साम जस्य सब तरफ बिखरा पडा है, ऐसी कितनी ही व्यथापूरित अश्रूपूण आखें होगी, जो यत्र तत्र सवत्र अश्रु वर्षा करती होगी पर उनके आसु पाछने वाला इस धरती पर कोई न होगा।



जीवन का सच

बाढ का पानी सीढियो तक आ चुका है। कल शाम तक तो गगा का पानी कितनी दूर चमक रहा था। एक रात म इतना पानी बढ गया। पानी म खेलने और तैरने की इच्छा ने मन म उत्साह भर दिया है स्कूल जाकर क्या करना है। अब तो सारे दिन पानी म डुबकी लगाना और बहते हुये आम, अमरूदो को पानी से निकालना है और बाट - बाट कर खाना है, ओ हो कितना मजा आयेगा पर तभी अम्मा जोर से पुकार उठती है"

"बिट्टी जल्दी तैयार हो जा, स्कूल बस आती होगी, रोज-रोज स्कूल बस छोड देती है तो रिक्शे के पैसे और लग जाते ह।"

जल्दी जल्दी बस्ता तैयार करने लगती हु, मां की उस भयकर मार को अभी तक भूल नही पाई हूँ, जब स्कूल न जाने की जिद पर और पैसे मागने पर मा ने सवा सेर का पीतल का लोटा सिर पर दे मारा था और खून की धार बहते देखकर स्वय रो पडी थी।

स्कूल मे कक्षा मे बैठी रहती हु पर मन भटकता रहता है, घर के आस पास पता नही गगाजी कहां तक आ गयी होगी। अन्यमनस्क सी बैठी रहती हु कि टीचर कह ही देती है—

"आज क्या बात है पढाइ मे मन नही लग रहा है। गुमसुम सी बैठी है, रोज तो उचक - उचक कर हाथ खडा कर प्रश्नो के उत्तर देने को तैयार रहती है।"

क्या कहू टीचर से, क्या यह कहू कि आज मेरा मन गगा की लहरो म भटक रहा है, मेरा घर आज टापू बना हुआ है, जिसमे खेलने के लिये मेरे मन प्राण बचेन है। छुट्टी होने पर स्कूल बस से लौटती हू तो बस घर तक नही आ पाती, चौमुहानी पर ही छोड देती हूँ क्योकि घर चारो तरफ से बाढ से घिर गया है।

छप छप छपाक लोग नावो से आ जा रहे ह, मैं भी नाव मे बैठकर घर पहुचती हू, गांव के अन्दर तक पानी भर गया है। पेडो पर साप लटक रहे है।

एक सफद रग का पिल्ला पानी म बहता आ रहा है उसे हमन बचा लिया है। सब भाई बहन उसकी तीमारदारी म लग गये हैं कोई उस साबुन से नहला रहा है, कोई बर्तन मे दूध और डबल रोटी लेकर चला आ रहा है बड़े मया कह रहे हैं—

'मा जल्दी से सामान बाघ ला, नीचे की मजिल का सारा सामान ऊपर ल जाना चाहिये, पानी के बहाव को देखकर लगता है कि आज रात नीच की मजिल म पानी भर जायगा।'

मुझे ऊपर से नीच आने का मना कर दिया गया है। शैतान जो ठहरी, अम्मा जल्दी जल्दी नीचे का सामान ऊपर करती है, पर मुझे अपनी किताब और कापियो की चिन्ता है, वही पानी म बह गई तो क्या होगा, अम्मा ता कह देगी पढाई से जी चुरान के लिय जान बूझकर गिरा दी होगी।

सास का अधिकार पूर्ण स्वर गू ज उठता है—

'बहु अभी तक रोटिया नही बनी क्या ऐसी गुमसुम म सी क्या बठी है'

स्मृतियो की चादर से उबरकर बाहर आती हू, पर क्या करू इस मन को जो भूलना चाह कर भी कुछ नही भूल पाता। भइया का हसता चेहरा सामने आता है—

मुन्नी तो कभी उदास नही होती हर समय हसती ही रहती है।'

ओह फिर वही बाढ और चारो तरफ पानी ही पानी। नीचे की मजिल म पानी भर गया है, घर छोडना पडेगा खतरा है, पुराना घर है कही बठ न जाये। नाव मे घर का सारा सामान रख दिया गया है। नाव धीरे-धीरे सुरक्षित स्थान की ओर बढती जा रही है। पानी से खेलने का सारा मजा किरकिरा हो हो गया है, घर पर रहते ता छत से पानी मे कूदते, कागज की ढेर सारी नावें बनाते उन्ह तैराकर होड लगाते, छोटे - छोटे कपडो को धोते नाव वालो का हाथ हिला हिलाकर बुलात पर अब क्या। मा ता आकर नयी जगह व्यवस्था करत म लग गई है। मा से कहते हैं—

मौं घर वापस कब चलेंगे"

मा कहती है—

जब बाढ का पानी उतर जायगा तब।"

तब जाकर क्या करेंगे अभी तो आहा ! कितना मजा आता।

उस समय कौन जानता था कि इन बातो को कि बाढ आनन्द का संदेश नही तबाही का संदेश लेकर आती है । लोगो के घर बार डूब जाते हैं, लोग बेघर बार के हो जाते हैं। आज जीवन का सच समझ पाई हू , पर बहुत देर हो चुकी है।



चुनौती

बार बार निशा का हृदय भर आता है, आखो के सामने अपनी लाडली बेटी बिनू का चेहरा नाचने लगता है, छाती मे हूक सी उठने लगती है।

उसकी एक मात्र लाडली बिनू को उससे दूर कर दिया गया है। छीनने वाला और कोई नही, स्वय उसका पति वरुण है, जिसे वह शादी के आठ वर्ष बीतने के बाद भी समझ नही पाई है कि वह क्या चाहता है? कब उसका मूड ठीक रहता है, कब किस बात को पसद करता है? जिस बात को एक समय पसद करता है वही दूसरे समय नापसदगी बन जाती है। बिनू को उसके हाथो से छीन कर ले जाना भी मात्र एक षडयन्त्र की रूपरेखा है कि न चाहते हुए भी निशा को उसके साथ जीवन भर रहने का समझौता करना पड़े।

सतान नारी का सहारा है तो ममता का दुर्बल पक्ष भी है, उसकी ममता उसे उन कार्यों को करने पर विवश कर देती है जिसे उसका हृदय कभी स्वीकार नही करना चाहता।

शायद वरुण ने भी यही सोचा है कि बिनू की ममता निशा को उसके सामने घुटने टेकने को विवश कर देगी। वह उसकी सही गलत सारी हरकतो को नजर अन्दाज कर उसके साथ रहने को तैयार हो जायेगी। बिनू के भविष्य का प्रश्न उसे समझौता करने पर बाध्य कर देगा।

पर निशा का सकल्प अटल है वह किसी भी कीमत पर समझौता नही करेगी। निशा के मन मे विचारो की आधी सी चलने लगती है, क्या करेगी वह। दिग्भ्रमित सी हो उठी है वह।

मां बाप के लाड प्यार मे पली चार भाइयो की लाडली निशा जिसने कभी ये जाना ही नही कि दु ख किस चिड़िया का नाम है। स्कूल मे पढने वाली अल्हड लडकी जिसे गभीरता छू भी नही गई थी। शैतानी करने के नये-नये तरीके इजाद करना उसकी दिनचर्या मे शामिल था। ब्याह के समय कोई उम्र भी तो नहीं थी बचपना पार करके पन्द्रहवें सोलहवें वर्ष मे ही उसने कदम रक्खा था।

बाबा अक्सर बीमार रहा करते थे, उनकी लाडली पोती उनके सामने

ही अपने घर बार की हो जाये, इसी कारण जल्दी ही उसका ब्याह कर दिया गया था। शादी मे मा बाप ने कुछ भी कसर न छोड़ी थी। दहेज से समधियाने वालो का घर भर गया था।

रूपवान तो वह थी ही, उसको बनाते समय विधाता ने कुछ भी कसर नही छोडी थी। गोरा रग, लम्बी सुतवा नाक, बडी - बडी आखे, साचे म ढली सम्पूर्ण देहयष्टि और उसके ऊपर जब वह सुर्ख लाल जोडा पहन कर ससुराल के आगन मे उतरी थी तो सारा घर और पडोस उसको देखने के लिये उमड पडा था। मुह दिखाई के समय कितने स्वर उसके कानो मे पडे थे—

—बडी सुन्दर बहू है।

—बिलकुल चाद का टुकडा है।

—घर मे आते ही उजाला हो गया।

सबने उसके सास ससुर को बधाई देते हूये उनके भाग्य की सराहा था। स्वय निशा भी तो अपने भाग्य पर फूली नही समा रही थी। ऐसे ही सुन्दर, सुशील, रुपवान पति की कल्पना का चित्र उसने अपने मन मे सजोये रक्खा था जो उसे वरुण जैसे पति के रूप मे मिला था।

विवाह के कुछ दिन तो रिश्तेदारो की भीड मे पख लगाकर उड गये थे। नई नवेली होने का चाव, सास ससुर की स्नेह पगी आवाजें, ननदो का हास परिहास, पति का मान मनुहार उसके जीवन को नित नये रग देता रहा।

पर आग लगे उस मनहूस शाम को, जब उसके पति एक अति आधुनिक युवती को पहली बार अपने साथ घर पर लाये थे और बडी आत्मीयता से उसका परिचय ये कह कर कराया था—

'मेरे दफ्तर मे मेरे साथ ही काम करती है।

—बडी कर्मठ महिला है।

—बेचारी ससार मे बिलकुल अकेली है।

बडी सहानुभूति सी झलकी थी उसके स्वर मे। और उसके बाद हर रोज नइ नई स्त्रिया उनके साथ घर आने लगी। कभी माया, कभी छाया, कभी विमला, कभी कमला वगरह वगरह।

वह कुशल गृहिणी की तरह उनका स्वागत करती। अगर स्वागत म जरा भी कमी रह जाती हो पति देव का कोप भाजन उसे ही बनना पडता। उसे मूर्ख बौडम, बेवकूफ आदि की संज्ञा दी जाती।

पर ये कभी सोचा भी न था कि पानी इस तरह सिर के ऊपर से निकल जायेगा। निशा के पति और उनके बीच सम्बन्धों का दायरा बढता ही गया। यहा तक कि वे एक दूसरे के अंतरग सम्बन्धो मे भी दखलन्दाजी करने लगी। कई - कई दिन तक वे एक दूसरे से अनबोले ही रहते। उसके स्वास्थ्य पर भी इसका प्रभाव पडे बिना न रहा। जो उसका केवल उसका था, उस पर अन्य किसी का अधिकार वो कसे स्वीकार कर सकती थी? उसके एकाधिकार को चुनौती दी जा रही थी, जब वह अपने पति की चर्चा अपने सास ससुर से करती तो वह बडी लापरवाही से सिर को झटका देकर मुह बनाकर कहते—

—तू क्या चाहती है कि वह हर समय तेरे ही खूटे से बधा रहे, आखिर आदमी है, दस जगह दूसरे काम भी है। तेरे को क्या कमी है, गहनों और कपडो से तेरी आलमारी भरी है उन्हे पहन और अपने शौक पूरे कर'

शायद उनके लिये दाम्पत्य का पवित्र अर्थ केवल गहने कपडो म ही सिमट कर रह गया था, पर निशा का मन इन सबमे नही रमता वह पति का सम्पूर्ण प्यार पाना चाहती है जो उसके जीवन का उपवन के समान महका दे। पर इसके बदले उसे मिल रही थी उपेक्षा और इस तरह उनके बीच दूरिया बढती गई। निशा ने कितनी बार प्रयत्न किया कि वह पूछे कि

—आखिर उसकी क्या गलती है?

—उसम क्या कमी है?

—क्या उसके आकर्षण मे कोई कमी है, जो वह उसे बाध नही पाती?

- एक बार केवल एक बार वो उसकी गलतिया गिना दे वह अपने म सुधार कर लेगी।

पर वरुण अबोल ही रहते। उनके बीच के रिश्ते अर्थहीन और बदरंग होते गये। उसने उन्हें समझाने का प्रयास किया था, उनके जीवन को सवारने का कितनी बार प्रयत्न किया था पर व मारपीट, गाली गलौच पर उतर आय थ और विवश होकर उसे वह घर छोडना पडा था।

जिस समय वह मा के घर पहुची तो सारा घर उसे देख अवाक रह

गया था मली साडो, जगह -जगह गालो पर आसुओ के बहते निशान, बिना कुछ कहे ही व सब कुछ समझ गये थे और मा के कधे से लगकर निशा बुरी तरह सिसक उठी थी।

मा के घर निशा हर समय उखडी-उखडी सी रहती। उस उमय उसके सुख दुख का सहारा बिनू ही थी। जिसकी भोली मुस्कान और तुतला तुतला कर मा - मा की रट लगाना सावन की रिमझिम फुहार के समान उसके घावो पर मरहम का लेप किया करती थी।

पर आज एक वर्ष हो गया है उसी बिनू की तोतली बाते सुनने के लिये उसके कान तरस गये हैं और यह खबर उडती - उडती मिल रही है कि—

—बेटी चाहिये तो आत्म सम्मान के मोह को त्याग कर यहा आकर रहे"

शायद ऐसा करके उसके पति उसकी ममता का सौदा करना चाहते हैं।

वह बिनू को तो कोर्ट से लडकर ले लेगी पर उनकी सही गलत हरकतो से समझौता कभी नही करेगी।

वह अपना रास्ता स्वय बनायेगी। दूसरो के साथ गलत रास्ते पर चलना उसे स्वीकाय नही।

वह अपने मा बाप पर भी आश्रित नही रहेगी। वह अपने परो पर खडी होगी, आखिर वह पढी लिखी है, जीवन म आने वाली चुनौतियो का मुकाबला कर सकती है।

जब उसके पति को उसकी आवश्यकता ही नही है, उनके लिये रिश्ते की पवित्रता कोई महत्व नही रखती तो वह उनके ऊपर बोझ क्यो बने ? वह ऐसा समझौता कदापि नही करेगी।

अपनी मजिल की तलाश वह स्वय करेगी। नारकीय जीवन जीना, घुटन टेकना उसे मजूर नही है वह अपनी अलग से पहचान बनायेगी। अपने आप को स्वावलम्बी बनाकर नारी जाति पर होने वाले अत्याचारो और पुरुष को अमर्यादिक आचरण के विरोध म वह अलख जगायेगी।



आखिरी निर्णय

—हट जाओ मेरे सामने से, निकल जाओ मेरे घर से, मुझे तुम्हारी सूरत जरा भी अच्छी नही लगती, हर समय चेहरे पर बारह बजे रहते हैं—

शलेश जोर-जोर से बोल रहे थे और वह चुपचाप खड़ी सुन रही थी। केवल वही क्यो, बड़े-बड़े बच्चे सुन रहे थे, दीवारो मे भी कान होते हैं सो पड़ौसी भी सुन रहे थे।

ऐसे तो किसके घर मे ये कहा सुनी नही होती, जहा दो चार बरतन होते हैं, वहा तो टकराहट पैदा हो ही जाती है, पर लोगो को दूसरो की टकराहट मे कुछ ज्यादा ही आनन्द आता है।

वैसे ऐसा भी नही कि उनमे ऐसा झगड़ा पहली बार हुआ हो, अक्सर छोटी - छोटी बातो पर नोक - झोंक चलती ही रहती है, कभी खर्चे को लेकर या बच्चों की पढ़ाई को लेकर एक दूसरे पर आरोप लगाना उनकी दिनचर्या मे शामिल हो चुका है।

—सारा दिन घूमते हो, पेट्रोल नही फूकता है क्या ?—

—तुम जो साड़ी रहते हुये एक के बाद एक खरीदती जाती हो, मेक-अप के सामान मे पैसे खर्च नही होते क्या ?

कभी बाजार से सब्जी लाने के बाद शलेश थैला पटक कर कहते—

—केवल मैंने ही सब्जी लाने का, सामान लाने का ठेका ले रखा है, क्या ? तुम सारा दिन घर मे क्या करती हो जरा बाजार से सब्जी खरीद कर नही ला सकती—

—क्यो ? मैं क्या घर मे रोटियां नहीं पकाती कपड़े नही धोती, सफाई नही करती, क्या तुमने मेरे लिये कोई नौकरानी रख छोड़ी है —

कभी बच्चो की पढ़ाई को लेकर झंझट बाजी हो जाती—

—सारा दिन बाहर घूमते हो, दो घडी बच्चो को लेकर ही पढाने बठ जाया करो—

—मैं क्या बिना काम के घूमता हू, तुम क्या करती हो, पढी लिखी हो, होम वक तो तुम करा ही सकती हो।"

इस तरह रोज ही किसी न किसी बात को लेकर दोनो मे हल्का सा तनाव हो जाता फिर सब कुछ सामान्य हो जाता। जब झगडा बढ जाता तो शलेश चुपचाप स्कूटर उठाकर बाहर निकल जाते और घटो भटकते रहते वह घर के कामो मे व्यस्त होकर अपनी चिडचिडाहट और आसुओ को भूल जाती, घर आने पर थाली मे खाना परोस कर रख देती और व अनबोल ही खाकर हाथ धो लेत ज्यादा जरूरी बात पर ही सवादो का सिलसिला चलता—

—मेरे पीछे कोई आया था—

—कोई नही —

— किसी का पत्र आया क्या—

—वह डाक लाकर चुपचाप सामने रख देती—

—बच्चे स्कूल गये—

—वह केवल सिर से ईशारा भर कर दती,—

कुछ दिन बाद थोडा सहज होने पर पूछ बठत—

—और तुम्हारे आफिस म सब ठीक - ठाक है।

—कोई नई बात तो नही हुई ?

—बच्चे होम वक ठीक कर रहे ह ?

वह भी नपे तुले शब्दो मे ही उत्तर देती। शायद घर का सारा उत्तर दायित्व वसुधा का ही था। पर उसने अब काम और अपने बीच तालमेल बैठा लिया था। दो तीन दिन तक कुछ असामान्य स्थिति होती फिर सहज हो जाता। दोनो बच्चे भी इस वातावरण के अभ्यस्त हो चले थे। उन्हे मालुम था, झगडा होने पर दो दिन तक मम्मी पापा हमारे माध्यम से बात करेंगे—

—गुड्डु, मम्मी को बोल देना मैं दो घटे लेट आऊगा—

मम्मी ऑफिस जाते समय पिंकी से कहेगी—

—पापा से कह देना गैस वाले के यहां फोन कर दें, गैस खत्म हो गई है।

फिर सहज होने पर संवादों का आपसी सिलसिला उनमें शुरू हो जायेगा, बच्चों की दिनचर्या एवं उनके क्रिया कलापों में इससे कोई अन्तर नहीं पडता था क्योंकि उनका होमवर्क कराना टिफिन तैयार करना मम्मी के रोजमर्रा के कामों में शामिल था। बस न आने पर स्कूल छोडना पापा का काम था और वे इसे बखूबी निभाते थे। इसके लिये किसी को भी कुछ कहने की आवश्यकता नहीं थी।

और इस तरह वसुधा और शलेश का छोटा सा परिवार खट्टे - मीठे अनुभवों को लिये अपनी यात्रा तय कर रहा था और घटनाओं की यह आवृत्ति और पुनरावृत्ति केवल उनके परिवार में ही नहीं लगभग सभी परिवारों में दुहराई जाती है।

पर वह वर्ष वसुधा के जीवन में तूफान लेकर आया, जब उसके दूर के रिश्ते की ननद की लडकी सन्नो उसके यहां बी ए की परीक्षा देने के लिये आई। कहने को तो वह उसकी लडकी क्षमा से जो कोई सोलह वर्ष की थी, उससे दो वर्ष ही बडी थी पर थी बडी चंचल। हर समय हंसी मजाक करना, नाचते गाते रहना, नयी - नयी पिक्चरों की बातें करना उसकी आदत में शामिल था। कहने को तो वह शलेश की बेटी के ही समान थी, पर पता नहीं उसकी यौवनमयी चंचलता के किस छोर ने उसे अपनी ओर आकर्षित कर लिया, इसे वसुधा समझ न पाई।

दफ्तर से सिर खपा कर लौटने के बाद जब सन्नो हंसती मुस्कराती उनके सामने आती और चंचलता वश उनके हाथों को पकड लेती तो पता नहीं क्या उनका रोम - रोम मंत्रमुग्ध सा हो जाता। वसुधा ऑफिस में और घर के कामों में व्यस्त रहती। उसे इतना समय कहां था कि वह पति के घर वापस लौटने पर मोहिनी मुस्कान से उनका स्वागत करे या देर होने पर पति से पूछे कि—

"आज दफ्तर में देर क्यों हो गई? कोई विशेष काम आ गया था क्या?

और अगर शैलेष घर आकर हाथों से सिर पकड कर बैठ जाये तो केवल इतना भर कह देना ही पर्याप्त था— आलमारी में बाम रखा है लगा लो, सिर दर्द ठीक हो जायेगा।"

इतना कह कर वसुधा अपने कामों में लग जाती। वह इस बात को भूल बैठी थी कि पुरुष चाहे कितना ही प्रौढ़ क्यों न हो जाये पर उसका मन इस बात की अपेक्षा करता है कि कोई उसकी प्रतीक्षा करे। सिर में दर्द होने पर अपनी कोमल उंगलियां उसके बालों में फिराये पर जिम्मेदारियों के भंवर जाल में उलझी वसुधा के लिये इन अपेक्षाओं को पूरा करना मुश्किल था। वैसे भी नये नये दाम्पत्य जीवन में तो इन अपेक्षाओं का पूरा किया जाता है पर बाद में ये सब बातें नये उत्तरदायित्व के साथ गौण हो जाती है।

लेकिन इन सब अपेक्षाओं को अब सन्नो पूरा करने लगी थी शैलेश को जरा सी भी बाहर से आने में देर हो जाती वह आते ही गले में बाहें डालकर झूल जाती—

—आज आपने घर आने में इतनी देर क्या कर दी, मैं तो कब से आपका इन्तजार कर रही थी, देखिये न मैं आपके कारण अब तक भूखी बैठी रही—

फिर वह गर्मा गर्म परोठे सेक कर लाती और वे दोनों डाईनिंग टेबिल पर कहकहे और शोर शराबे के बीच एक दूसरे को आग्रह से खिलाते रहते।

अगर शैलेश घर आते ही सिर थाम कर बैठ जाते तो वह उनके पास आकर नर्म-नर्म उंगलियां उनके बालों में फिराने लगती सिर दबाने लगती, और गर्म - गर्म लौंग, इलायची की चाय बनाकर लाती। उस समय उन्हें ऐसा लगता जैसे वो तपते मरुस्थल में यात्रा करते-करते किसी शांत सुखद वृक्ष की घनी छाया तले बैठ कर विश्राम कर रहे हों।

जो शैलेश हमेशा घर के बाहर रहते वे अब अधिकांश समय घर में ही बिताने लगे थे, कभी विडीयो क्लब से नई नई पिक्चरें लाते, कभी सन्नो को साथ ले जाकर शो रूम से नये फैशन का सलवार कुर्ता दिलवा कर लाते और परीक्षा शुरु होने पर दो - दो घंटा उसी को पढ़ाते रहते। परीक्षा भवन तक दो बार उसे छोड़ने जाते और दो बार लेने जाते। अब यदि वसुधा कभी देर होने पर उनके ऑफिस छोड़ने का आग्रह करती तो सपाट सा उत्तर मिलता—

—मुझे सन्नो को पहुंचाना है, देर हो जायेगी तो उसका पेपर छूट जायेगा"—

जब अक्सर आफिस जाने में देर होने लगी तो थकीहारी वसुधा को नई लूना खरीदनी पड़ी, हालांकि उसका हाथ इन दिनों तंग था। रोज नये नये खर्च

सामने आते थे परिवार के बीच रहते हुये गम दम से सात हजार रुपय निकालना बहुत मुश्किल था पर वसुधा ने सूना ना जुगाड़ जिसना म जिठाया था और यह सोचकर निश्चितता की सांस ली थी कि हर महीने तनख्वाह मिलने पर किश्त का भुगतान कर देगी वसे भी तो देर होने पर रोज बास मे किचकिच होती है, जिससे मन और अशांत हो जाना है। बास अक्सर कहते—

—"क्या बात [redacted] मिसेज अरोड़ा, आज कल आप अक्सर लेट आती है, थकी - थकी सी दिखती है, पहले जैसी कुशलता से काम भी नहीं करती, बीमार है क्या ?—

सहकर्मी भी उसे टोक कर कहते—

—'क्या आजकल आपका चेहरा उतरा हुआ क्या रहता है ? वसुधा ! पहले जैसी चुस्ती फुर्ती कहा चली गई" ?

कैसे कहती वह, क्या कहती कि आजकल उसकी सुख भरी गृहस्थी को ग्रहण लग गया है और फिर सब बातें तो सबसे कहने की नहीं होती।

फिर वह इस बात को भी अच्छी तरह जानती है, शलेश का सन्नो के प्रति आकर्षण वासना जनित नहीं है वह तो कुछ समय के लिय सुख की स्वप्निल छाया में अपने को खो देना चाहते हैं, जब सन्नो वापस लौट जायेगी तो सब कुछ पहले की भांति सामान्य हो जायगा।

पर तो भी वसुधा का मन तनाव ग्रस्त रहता है। आजकल शलेश उससे पहले की तरह नोक झोंक भी तो नहीं करते। और उस समय तो उसके दिमाग की नसें चिटकने सी लगती है, जब सन्नो के सामने पडते ही शलेश उसकी तारीफों के पुल बाध देते—

—'आज तो पीले रग के सलवार कुर्ते मे बड़ी जच रही हो सन्ना," "ऐसा लगता है जसे सरसों के खेत मे कोई नायिका किसी की प्रतीक्षा कर रही हो। और सन्नो खिलखिला कर हस पडती, उसकी हसी ऐसी निष्पाप हसी लगती, जैसे दूर कहीं मदिर म घटिया बज रही हो।

जब वसुधा रोटिया बनाकर लाती तो शलेश कहते—

—तुम जरा भी अच्छी रोटी नहीं बनाती।"

"आ रे, सन्नो जाकर बढ़िया गरम गरम चपाती बनाकर ला '

तब जैसे वसुधा का सवाग अवहेलना से भस्मीभूत हो उठता। वह घर गृहस्थी के लिए इतनी मरती खपती है, उसकी कोई तारीफ नही और यहा सन्नो की तारीफ के पुल पर पुल बाध जा रहे हैं।

जब सन्नो के पेपर खतम हो गये तो उन दोनो का रोज नई - नई जगह घूमने का प्रोग्राम बनता, नई डिशे बनाने का प्रस्ताव रक्खा जाता, वे बाहर जाते तो साथ साथ। घर मे रहते तो दोनो पास पास बैठे रहते, हँसी कहकहा बातों का दौर चलता रहता।

वे दोनो जैसे एक स्वप्नमय संसार मे विचरण कर रहे थे। वसुधा का इन सबसे कहीं कोई स्थान न था, उसका अस्तित्व केवल इतना सा था कि वह घर की व्यवस्था को ठीक ठाक रक्खे।

बच्चे भी इस बदलते परिवेश से अनभिज्ञ हो, एसी बात नही, आखिर वे भी तो यौवन और कैशोर्य के सगम स्थल पर खड़े हुये थे, वे भी इस बात का महसूस कर रहे कि सन्नो आंटी पापा को कुछ ज्यादा ही अच्छी लगती है।

लेकिन मम्मोहन की यह अवस्था कब तक चलती। एक दिन तो सन्नो को अपनी मा के घर जाना ही था। वसुधा के प्रस्ताव रखने पर—

"अब तो सन्नो की परीक्षा खत्म हो गई, घूमना फिरना भी बहुत हो लिया, अब इसे वापस बीजी के यहा छोड़ आवो'

तो दोनो ही जैसे सन्न से रह गये थे, उन्हे ऐसा लगा था जैसे किसी ने उन्हें गहरी नीद मे सोते से जगा दिया हो। अनमने से बोले थे शैलेश।

"अभी जल्दी क्या है, कुछ दिन और रहने दो, मेरी गर्मी की छुट्टिया होगी तब जाकर छोड़ आऊँगा। सन्नो भी बोली थी—

"क्या जीजी मैं आपको बोझ लगती हूँ क्या, जो मुझे इतनी जल्दी भेजना चाहती हैं।"

वसुधा ने अनमनस्क सी होकर कहा था—

"नहीं ऐसी तो कोई बात नही पर तेरे बिना वहा बीजी को तकलीफ भी तो होती होगी, वह बीमार जो ठहरी।"

वसुधा इस बात को समझ गई थी कि न शलेश सन्नो को भेजना चाहते

है और न वह जाना चाहती है। इसलिये विवश होकर उसे बिना शलभ को बताये एक निर्णय लेना पड़ा। उसने बीजी को चुपचाप एक पत्र लिख दिया–

सन्नो की परीक्षा खतम हो गई है, इसलिये वह राहुल भेजकर उसे जल्दी से जल्दी बुला लें और कोई अच्छा सा लड़का देखकर उसके हाथ पीले कर दें, क्योंकि सन्नो अब बच्ची नहीं रही है। बहुत बड़ी हो गई है।"



विडम्बना

एक मा के पट से जन्मी, एक ही घर म पली, पिता की स्नेह छाया मे बडी हुई उन दो सुकुमार बहिनो की पैदाईश मे कुछ वर्षों का अन्तराल ही तो था। पर उम्र म छोटी प्रमा तो शायद पैदा ही हुई थी, अपनी विकलागता का अभिशाप लेकर। उसके दानो पैर कमजोर एव निर्जीव से थे।

कुछ दिनो ता मा का ध्यान इस आर नही गया, लकिन जिस उम्र म छोटे छोटे बच्चे खड होने का प्रयास करत हैं खटिया पकड कर चलने लगते है उस उम्र म भी प्रमा का न चल पाना मा को कही अन्दर तक झकझार गया था। मन म प्रश्नो की आंधो सी चलने लगी थी—

"क्या यह लडकी कभी नही चल पाएगी ?

अभी तो छाटी है। बडी होगी ता कसे सह पाएगी वह अपनी बढती उपक्षा को।"

जसे जसे प्रमा बडी होती गई और वह चलने का उपक्रम करने पर भी नही चल पाती थी, तथा लडखडाकर गिर पडती थी बस— वसे मा की आखा म और अधिक सूनापन घिरता जाता था। पहले पहल तो मा न इसे सहज रूप म लिया और सोचा कि सभी बच्चे शुरू शुरू म ऐसे लडखडाकर चलना सीखत है। लकिन जब रोज रोज इसी तरह गिरने पडने की पुनरावति होने लगी तो मा की आशका दृढ होती गई।

और एक दिन, जब मा आगन म बैठी बैठी गेहू साफ कर रही थी— बाहर बहुत सारी मुहल्ले की बच्चिया खेल खेल रही थी बडे ही अच्छे बोल थे उस खेल के —

फूलो से हम आते है।

किसको लेने आती हो ?

किसको लेने भेजोगी ?

किसकी शादी ?

और यही बोल बोलते हुए एक पाल की लड़कियां दूसरे पाल की लड़कियों के बीच में ऊपर हाथ करके नीचे से निकल आया करती थी। एकाएक मां का ध्यान गया–

प्रभा अपने पैरों का बार - बार उठाती, घसीटने का प्रयास करती, खेल की यही पंक्तियां दुहरा रही थी–

फूलों से हम आते है, किसको लेने भेजोगी ?

किन्तु जब बार - बार कोशिश करने के बाद भी वह चल नहीं पायी थी तो हार कर वहीं गिर पड़ी थी और फूट फूट कर रोने लगी थी, वह सुबकती जा रही थी और कहती जा रही थी।

मां ! क्या मैं कभी फूलों वाला खेल नहीं खेल सकूंगी ?"

और उसकी पीठ थपथपाते, कन्धे से चिपकाते मां भी रो पड़ी थी, आखिर वह करती भी क्या ?

जबसे मां का यह आभास हुआ था कि प्रभा कभी नहीं चल पाएगी वह एक से एक अच्छे डाक्टरों के पास दौड़ती रही, देशी विदेशी सारे ईलाज करवाती रही। प्रभा को कार्डलिवर आयल की मालिश करने की सलाह दी गई थी। मां सवेरे शाम नियम से दो बार उसकी मालिश करती, शायद प्रभा के पैर काम देने लगें।

मां दिन भर घर के कामों में जुटी रहती, प्रभा बिस्तर पर लेटे लेटे, टुकर टुकर मां को कमरे और आंगन में काम करते निहारा करती। अक्सर मां को घर से बाहर का काम भी देखना पड़ता, क्योंकि बाबूजी आये दिन सरकारी दौरे पर रहा करते थे। ऐसे समय प्रभा का सबसे बड़ा सहारा किरण ही तो थी जो उसे अपने ऊपर लादकर कभी फलों के बगीचों की सैर कराती, कभी चौमुहानी तक घुमा कर लाती। उसको लिये किरण की कमर भी दुखने लगती पर जब प्रभा की आंखों में वह चमक देखती, नई चीजों को देखकर उसको हंसता देखती तो वह अपनी सारी थकान भूल जाती थी।

किरण खुद इतनी होशियार तो न थी कि प्रभा को अच्छी तरह सजा सवार सके, पर उसे गोद में उठाकर घुमाघुमा कर उसकी उदासी तो दूर कर ही सकती थी और यही वह करती थी। इसलिए मां प्रभा की ओर से कुछ निश्चित सी रहा करती थी। किरण ने मां की परेशानियों में थोड़ा बहुत साझा तो कर ही लिया था।

लेकिन एक दिन, !

उफ ! कितना भयावह दृश्य था वह, जब किरण को सातो प्रकार की माता निकल आई थी। उस समय मेडिकल मे इसका कोई इलाज भी तो नही था, लोग इसे केवल देवी का कोप समझते थे। सारे घर मे तलना, छोकना बन्द हो गया था। सब लोग उबला खाना खाने लगे थे।

माता का प्रकोप इतना तेज था कि बिस्तर भी किरण को काटे के समान तकलीफ देह लगता था, बड़े बड़े चकते से पूरे शरीर पर उभर गये थे। राख को छान छान कर उस पर उसे सुलाया जाता था यह बेहोश सी पड़ी रहती थी। घर के सारे बच्चो को उसके कमरे मे जाने की मनाही कर दी गई थी, छूत का रोग जो ठहरा। घर मे अगर एक बच्चे को माता निकलती है तो सबको बारी बारी मे निकल आती है। इसीलिए ऐसा जतन किया गया था।

पर सबसे अधिक रोना तो प्रभा को आ रहा था, जब से जीजी बीमार पड़ी है, उसे कोइ भी गोद मे नही उठाता, मा भी दिन भर जीजी के पास ही बठी रहती फूलो की सैर कराने वाली चौमुहानी तक घुमा कर लाने वाली जीजी को वह देखने के लिय तरस गइ थी।

वह दिन रात बिस्तर पर पड़े पड़े सुबका करती और मा के सामने आते ही रूआसी आवाज मे कहती—

—मा ! जीजी कब ठीक होगी ?

मा ! वह मुझे घुमाने कब ले जायेगी ?

माँ भला क्या उत्तर देती–

वह तो आप परेशान थी। किरण की बीमारी ने उनका दिन का चन और रातो की नीद हराम कर दी थी ! प्रभा के बार बार एक ही प्रश्न पूछने पर यह निरुत्तर हो जाती और आचल मे मुह छिपा कर फफक फफक कर रो पड़ती।

प्रभा दिन रात पड़े पड़े छत की कड़िया की ओर ताका करती। कभी कभी वह रो-रो कर हलकान हो जाती पर उसकी ओर किसी का ध्यान नही जाता। किरण की बीमारी ने सबके होश उड़ा दिये थे।

प्रभा का कोमल मन इन उपेक्षाओ को सहन न कर सका हालाकि ये उपेक्षायें नही थी, घर के लोगो की परेशानी थी, पर भला प्रभा का अबोध मन

इस बात का क्या समझना। जिस जीजी की गोद में आकर वह अपनापन को भूल बैठती थी। उसी का दम एक मास बीत चुका था।

समय बीतने के साथ चेचक का प्रकोप कम होता गया और किरण ठीक होने लगी पर ठीक होना भी कोई ठीक होना था?

यह रोग उसे न जाने कितने अभिशापों से शापित कर गया था। उसे देखते ही डर लगता था, सिर के सारे बाल उड़ने के कारण वह रुण्ड मुण्ड सी हो गई थी, जीभ में चेचक निकल आने के कारण वह हकला हकला कर बोलने लगी थी उसके दिमाग पर भी माता की गर्मी अपना असर छोड़ गई थी और कोई कुछ कहता वह उसे मारने को दौड़ती। जिस प्रभा को वह दिन भर गोद में उठाये फिरा करती थी, उसी को अब फूटी आंखों न देखना सहन नहीं करती थी, उसे गोद में उठाना खिलाना तो दूर की बात रही।

प्रभा का मन इन आघातों को सहन न कर सका, उसने किरण की बीमारी में कैसी मुश्किल से एक एक दिन काटे थे कि

जीजी ठीक हो जाएगी तो वह पहले की तरह उसे फूलों के बाग में घुमायेगी।

पर किरण का उसकी ओर बिलकुल ध्यान न देना उसे मानसिक और शारीरिक रूप से पीड़ित कर गया। प्रभा दिन पर दिन सूखती चली गई, उसकी काया बिस्तर से चिपकती चली गई।

डाक्टरों ने बताया कि प्रभा को सूखन्डी रोग हो गया दवाओं के असर को भी प्रभा की दुर्बल काया नकारती गई थी।

और एक दिन अपनी सारी विवशताओं व्यथाओं को मन में समेटे प्रभा ने मां की गोद में हिचकी लेते हुए दम तोड़ दिया था। डाक्टरों के लाख प्रयत्न भी उस मासूम की जान न बचा सके थे।

उस विवश प्रभा को उसकी सखियां फूलों के बाग में तो नहीं ले जा सकी थीं, पर यमराज उसे लेने अवश्य आ गये थे जिस खटिया पर प्रभा अपनी विवशता का भार लिये दिन रात पड़ी रहा करती थी वह जगह अब खाली हो गई थी, केवल उस सूनेपन में एक आवाज सी गूंजती है

— फूलों में हम आते हैं।

किसका लेने आती हो?

किसको लेने भेजोगी?

विवशता

घडी के अलाम मे चार बजने की आवाज सुनकर एक झटके के साथ नींद खुल जाती है। सवेरा होते ही मशीनी जिन्दगी का क्रम शुरु हो जाता है, बस पकडनी है, दूसरे गाव जाकर ड्यूटी पर पहुचना है। घर मे बस स्टण्ड तक तक जान के लिये भी कम से कम पन्द्रह बीस मिनट तो हाथ मे रखने ही पडते हैं, पर इतनी हडबडाहट के बावजूद भी बस सामने से धूल उडाती निकल जाती है, दूसरी बस के लिये प्रतीक्षा करते रहो, ड्यूटी पर पहुचने मे अलग देर हो जाती है, मन और मस्तिष्क मे तनाव उत्पन्न हो जाता है कनपटियो की नसें चिटकने लगती है। स्कूल देर से पहुचने पर प्रधान के द्वारा उलाहने और शिकायतें सुनने का मिनेगी सो अलग। दीवाल घडी की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया जायेगा—

'देखिये न घडी मे कितने बज रहे हैं आप लोग स्कूल अब तशरीफ ला रही हैं'

अगर अपनी असमर्थता और विवशता की दलीलें दी जायेगी कि—

"हम तो सवेरे साढे पाच बजे से बस स्टेण्ड पर खडे हैं पर बस ही नहीं मिली तो हम क्या करें"

—इससे हमे क्या मतलब ? भले ही आप रात को ही बस स्टेण्ड पर आकर बठ जायें पर यहा तो आप आठ बजे पहुची है।

कभी कभी तो नौबत यहा तक आ जाती है कि हेडमिस्ट्रेस हाजिरी रजिस्टर पर झुकी रहती है और साइन करने से पहले ही वह उठती है

'बस बहुत हो गया, यह रोज रोज की लेट नही चलेगी, छुट्टी दीजिये और घर बैठिये।'

उस समय मन मस्तिष्क इतना अवसादग्रस्त हो जाता है कि पूछिये मत।

सच तो यह है कि रोज-रोज अप डाउन करना भी जान की जिल्लत है। ऐसा लगता है, जैसे घर न हुआ कोई धर्मशाला हो गइ, जहा पर रात्रि के

च-र घटे केवल विश्राम करने के लिये आते हैं, फिर सवेरा होते ही शुरू हो जाता है, भाग दौड का अंतहीन सिलसिला।

नौकरी एक करता है, नींद सबकी खराब होती है, किसी का छोटा भाई बस स्टण्ड पर आंखें मलते हुये पहुचाने के लिय आ रहा है, किसी के पति उल्टी सीधी शर्ट पहनकर पैरो म चप्पलें डालकर छोडने आते हैं, जो कुमारी है उनके बूढे बाप घूमने के बहाने से ही स्टण्ड पर चले आते हैं। इतनी हडबडाहट म एक कप चाय भी तो चैन से बैठ कर नहीं पी जा सकती, जल्दी जल्दी लच बाक्स म दो पराठे डालकर बस स्टण्ड की ओर कदम उठने लगते हैं।

बेचारी कमला भी इन्हीं मे एक है, जिसके दो महीने के बच्चे को घर पर रखने के लिये नौकरानी भी नही मिलती है, गोद मे लिय लिये बस म सफर करती हुइ स्कूल जाती है साथ म थैले म सारे ताम झाम बच्चे के लिये सवेरे सवेरे तयार करने पडते है, दूध की बोतल, नेपकिन। एक जान हजार झंझट।

स्कूल म आने पर स्कूल के सामने रहने वाली बाइ को उसे समला देती है और छुट्टी होने पर फिर गोद म उठाये घर वापिस आती है। लौटते समय लम्बे रूट की बसें अक्सर भरी मिलती है, कभी बैठने को जगह मिलती है, कभी नही, यात्रियो से जगह के लिय चिरौरी करने पर उत्तर मिलता है—

'आप नही हैं गोद मे बच्चा है तो हम क्या करें, हम भी तो इतनी दूर के सफर से थके हुये आ रहे हैं'

काइ दूसरा यात्री यहा तक कहने म भी नही चूकता—

"बहन जी आराम करना है तो घर बैठिये, यहा बस म धक्के खाने क्यो चली आती है'

सब कुछ सुनना पडता है, क्योकि विवशता है।

उन्हीं म से एक मधु भी है, जो दिन भर खांसती रहती है, दम उठता रहता है कितने ही डॉक्टर आयुर्वेदिक और होमियोपैथिक इलाज करवा लिये पर रोग है कि ठीक होने का नाम ही नही लेता ठीक हो भी कसे डाक्टर पूरा आराम करने की सलाह देते हैं पर अप-डाउन की इस अफरा तफरी मे दो मिनट विश्राम भी कहा मिलता है।

पर इन सब के बीच कुछ सुखद क्षणो का अहसास भी करना पडता है नही तो जिन्दगी बोझिल न हो जाये। लेट होने पर बास से अक्सर टच्चरबाजा

हो जाती है, पर सहकर्मी एक दूसरे की परिस्थितियो से अच्छी तरह परिचित है, तभी तो न रुकने वाले स्टाप पर भी बस रुक्वा देते हैं दूर से आता हुआ देखकर जल्दी आने के लिये जोर जोर से हाथ हिलाते हैं, बच्चे को अपनी गोद मे जगह दे देते हैं काइ एक दो तो है नही पूरे चालीस सहकर्मी है, जो एक दूसरे के सुख दुख के भागीदार हे ।

वापस घर लौटने की जल्दी सबको रहती है पर तब भी कोई किसी को छोडकर नही आता । यह जानते हुए भी कि कोइ उनसे गिला शिकवा नही करेगा कि तुम उसे छोडकर क्या चले गये और न उनको किसी के द्वारा पूछे गये प्रश्नो का उत्तर देना होगा पर यह बात है, अपनी आत्मा की उस सवेदना की, जो इन कष्टो के बीच भी उन्हें एक दूसरे से बाधे हुये है । तभी तो बस न मिलने पर बकरी से भरी ट्रक मे आना मजूर है कुछ दूर तक पैदल चलना भी स्वीकाय है, पर साथियो का साथ छोडना मजूर नही है ।

इस क्रम म सुषमा उत्तरदायित्वपूण ममतामयी मा की भूमिका अदा करती आइ है

किसी को छोडकर जाना नही है,

सबको एक साथ रहना है,

एक साथ वापिस घर लौटना है"

उनका यह आपसी विश्वास ही उन्हे सघर्षों मे जीने की प्रेरणा देता है । भीड से खचाखच भरी बस उमस से भरा वातावरण उनके आपसी हास परिहास से सरस हो उठता है । रास्ता कितनी आसानी से कट जाता है, दूरी का आभास रच मात्र भी नही होता ।

लेकिन ड्यूटी पर पहुचते ही खतरे की तलवार सिर पर लटकने लगती है । रोज रोज समय को लेकर तनाव बढने लगता है, बस पर अपना वश नही है । इसलिये देर सबेर हो ही जाती है ।

घर से दूर रहकर दो चूल्हे करना कोइ सरल काम है क्या ? पर बास को इन मजबुरियो से क्या लेना देना, उनका काम तो रोज खबरें लिख लिख कर हेड ऑफिस पहुचाना है ।

अप डाउन करने वाली महिलायें चाहे कितना ही हाड तक क्यो न करें स्कूल की उन्नति के लिये चाहे दिन रात एक क्यो न कर दे, पर पाच

मिनट की देरी होने पर सब कुछ गुड़ गोबर हो जाता है, उनके द्वारा किय गये कार्यों का मूल्यांकन कोई नही करता केवल एक ही प्रश्नवाचक चिन्ह सामने हैं—

"आप समय पर ड्यूटी पर क्यो नही पहुंचते हैं ?"

पहले ही बस मे धक्के खाने पड़ते हैं, कभी कभी दो दो घण्टे बस की प्रतीक्षा करने मे बीत जाते हैं, बस आती है तो रुकती नही है, मुंह चिढाते हुए धूल उड़ाते हुये निकल जाती है। उस समय कसी हालत होती है, इसे कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है ?

जब किसी का ट्रांसफर गाव से शहर होता है तो सारे स्टाफ म खुशी की लहर दौड़ जाती है, सब एक स्वर से कहते हैं—

"अच्छा हुआ पीछा छूटा, इस रोज की चख चख से"

यह रोज की चिकचिक तो उनके साथ लगी ही हुई है, अगर सर्विस करनी है तो यह परेशानी भोगनी ही होगी,

कितना दुख लगता है, उस समय जब हमेशा व्यग्य बाणो से उह बीधा जाता है—

—मन हर समय घर मे पड़ा रहता है।

—घडी की सुईया गिनती रहती है,

छुट्टी होने पर कितनी जल्दी जल्दी कदम उठते हैं, बस स्टेण्ड पर पहुंचने के लिये,

पता नही ऐसा क्या सुख है घर मे,

पढाने मे इनका मन क्या खाक लगता होगा'

सब कुछ सुनना पड़ता है कलेजे पर पत्थर रखकर क्योंकि विवशता है।



आघात

एक पखवाड़ा बीत गया कालिंदी ने अन्न का परित्याग कर रक्खा है, मुह मे रोटी का एक टुकडा भी उससे डाला नहीं जाता है सूख कर मुह पीला पड गया है, आंखो के चारो ओर काले धब्बे से पड गये हैं,

कितना सुन्दर लगता था कालिंदी का चेहरा, अ ग-अ ग से जसे यौवन की आभा सी फूटी जान पडती थी। लेकिन इन दिनो वह सूख कर ऐसी हो गई है, जैसे किसी ने उसके बदन का सारा रस निचोड कर रख दिया हो,

हर समय हसने मुस्कराने वाली, अभिवादन के लिये उत्फुल मुखडे से हाथ जोडती सबकी वेदना मे सहभागिनी कालिन्दी आज दुर्देव की शिकार होकर देवी की प्रतिमा के आगे प्रार्थना रत है कि वह उसका न्याय करे, या तो उस रमेश को सद्बुद्धि दे जो पिता के प्रति अपने कर्तव्य को तिलांजलि देकर उसका प्राण हरण करने मे भी नही हिचकिचा रहा है और जिसके कारण कालिंदी और राकेश का जीवन एक जलती धूनी के समान हो गया है, या कालिंदी स्वय उन सबसे इतनी दूर चली जाये कि उसकी छाया भी उस न छू सके

वैसे तो कालिंदी को यह आशका बहुत पहले से थी कि कुछ न कुछ अप्रत्याशित अवश्य घटकर रहेगा, इधर जब से रमेश को बीच बाजार मे दुकान खुलवा दी गई थी तब से वह कुछ ज्यादा ही सिर चढ़ गया था, घरेलु कामकाज से उसे कोई सरोकार नही था, राकेश बीमार है, कालिंदी का हाथ जल गया है, उसके लिये दवा लानी है इन सबसे जैसे कोई मतलब ही न हो।

इधर लगभग बीस पच्चीस दिन हो गये उसने घर से रोटियां खानी भी छोड दी थी, पूछने पर अनमना उत्तर देता—

"दुकान म काम बहुत है, घर आन का समय ही नहीं मिलता, उपर बाजार मे ही कुछ खा पीकर पेट भर लेता हू।"

दर रात गये जब वह दुकान से घर वापिस लौटता तो कां
लिये थाली परोस कर कमरे मे रख जाती पर सवेरे थाली पस की
हुई ही मिलती, ऐसा लगता जैसे रमेश ने थाली को हाथ ही ॥

मे फोर जाने की बात तो दूर रही। रमेश भी इस बात पर बहुत दिनो से गौर कर रहे थे।

धनतेरस के दिन कालिंदी ने पूजा आदि करके रच रच के ढेर सारे पकवान बनाये कि आज सब साथ मिल बैठकर खायेंगे, लेकिन जब रमेश घर आया तो उसके तेवर बदले हुये थे, नशे के कारण उसके होश हवास गुम थे, पर डगमगा रहे थे। वह जब बिना किसी से कुछ बोले चाले अपने कमरे मे जाने लगा तो कालिंदी ने आग्रहपूर्वक उससे कहा—

'बेटा आज धनतेरस का दिन है, थोडा सा तो मुह झूठा कर लो"

इस पर गरज कर रमेश बोला—

"मुझे नही खाना ऐसा खाना,

भाड मे जाये तुम्हारे पकवान

मुझे नीद आ रही है, कम से कम रात मे चैन की नीद तो सोने दो'

कालिंदी के ज्यादा आग्रह करने पर उसने उसे जोर का धक्का दिया, तब राकेश अपने आपको रोक न सके, उनके सब्र का बाध टूट गया रमेश से आवेश मे आकर वे बोले—

एक तो तुम्हारे लक्षण वैसे भी आजकल ठीक नही है, रोज देरी से घर आते हो, छः महीने दुकान खुलवाये हो गये, तुमने एक पैसा भी घर मे नही दिया ऊपर से अन्न बर्बाद करते हो, मुफ्त की मिल रही है इसलिये क्या ?

यह सुनकर रमेश ऐसे उछल पडा, जैसे किसी ने जलती आग मे घी डाल दिया हो, क्रोधावेश मे आकर मरने मारने पर उतारू हो गया और जोर जोर से चिल्लाने लगा—

"साले बडा घमण्ड है अपने ऊपर हमे रोटिया खिलाते हैं सो भी मुफ्त की।

थू है ऐसी रोटियो पर आज तुम्हे ठिकाने लगा कर ही दम लूगा, फिर बच्चू सारी भाषणबाजी भूल जायेंगे'

वह राकेश पर लगातार थप्पड मुक्को की वर्षा कर रहा था कालिंदी दोनो के बीच बचाव कर रही थी, पर रमेश के लंबे हाथो और ऊंचे कद के आगे

उसका कोई वश नही चल रहा था, हल्की सी सर्दी की लटक आन लगी थी, इसलिये आस पास की छत पर पडोसी भी कोई दिखाई नही दे रहे थे, जो थे व अपने कमरो मे दुबके पडे थे जिन एक दो लोगो ने इस घटना का देखा व भी यह सोच कर चुप रह कि—

अरे, य तो बाप बेटे का आपसी झगडा है। पराइ आग म रोटिया सेंकने हम क्या जायें, मान लो बीच बचाव करने भी गय और अगर ये सुनने का मिल गया—

"आप कौन होते हैं, हमारे व्यक्तिगत जीवन मे टाग अडाने वाले ?

अरे साहब, ये हमारा आपसी मामला है, हम खुद सलट लेंगे,

जाइये और अपना घर सभालिये,

घर मे तो दीया जलता नही पर मस्जिद म दिया जरूर जलायेंगे

तब तो सारा पानी ही उतर जायगा।

इधर जब रमेश हाथो की मार से कालिदी राकेश का छुडा न सकी तो उसन थकहार कर राकेश को कमरे म डालकर ताला बाहर से बद कर दिया, लकिन उसे क्या पता कि जिसे वह सुरक्षित समझ कर निश्चित हो गई थी वह अभी भी सुरक्षित नही था, बाहर वालो से खतरा हो तो उनसे निपटा भी जा सकता है, पर जब बाड ही खेत को खाने लगे, रक्षक ही भक्षक बन जाये, अपना खून ही दुश्मन हो जाये तो भला सुरक्षा की क्या राह रह जाती है। सुरक्षा के लिये ही तो आदमी घर बनाता है, लेकिन जब घर की दीवारें ही घर को खाने लग तो भला किसका वश चलता है।

इधर रमेश अपने कमरे मे चला तो गया लेकिन उसके मन म एक भयकर ज्वालामुखी फट चुका था, जिसके गर्मागम लावे से उसका सम्पूर्ण शरीर दग्ध हो रहा था।

उस पर यह जुनून सवार था कि आज वह इस अध्याय का हमेशा के लिये समाप्त कर देगा और वह बडी बेचैनी से अपने कमरे मे हथियार खोज रहा था, अचानक उसकी नजर अपनी फोटो के पीछे पडी और उसने पिस्तोल निकाल कर हाथ मे ले ली। उसने बाहर आकर खिडकी से कमरे के अन्दर बठे राकेश पर निशाना साधा और पिस्तोल से गोली चला दी।

उस दिन राकेश बाल बाल बच गये थे, गोली तस्वीरों के शीशों को चूर चूर करती, दीवारों में छेद करती बाहर निकल गई थी अगर निशाना सही लग जाता तो राकेश की जीवन लीला समाप्त हो सकती थी और उस घर में कालिंदी के सौभाग्य का दीपक हमेशा के लिये बुझ सकता था।

रमेश के सिर पर जैसे खून सवार हो गया था वह छत पर चढ़ गया और जोर जोर से चिल्लाने लगा—

"खबरदार! गोली की आवाज सुनकर कोई बाहर आया तो एक एक को भूनकर रख दूंगा"

राकेश और कालिंदी दोनों इस घटना से हतप्रभ से रह गये थे रमेश की संगत खराब है ये तो वे जानते थे, लेकिन उसकी परिणति इतनी भयंकर होती है यह कहां जानते थे। कभी सोचते "पुलिस में रिपोर्ट करा दें" पर यह सोच कर चुप रह जाते—

लोग क्या कहेंगे

बाप ने बेटे के हाथों में हथकड़ी लगवा दी,

अगर जेल हो गई तो सजायाफ्ता समझ कर इसे कौन अपनी लड़की देगा।

वे दोनों दिन भर घर की दीवारों में घिर दुखों के सागर में डूबते उतरते व्यथा का कोई अन्त नहीं। काम पर जाने की इच्छा भी नहीं करती, बाहर निकलने पर लोग दस तरह के प्रश्न पूछेंगे किस किसको उत्तर देंगे और किस किसका मुंह बन्द करेंगे, क्या लोगों से ये कहेंगे कि—

जिन हाथों से बेटे को पाला पोसा है, आज वह बेटा उन्हीं हाथों को काटने पर उतारू है।

पति के दुख से दुखी कालिंदी भी क्या सोचे और क्या करे मन में जब भावनाओं का ज्वार आता है तो सोचती है—

अगर रमेश के स्थान पर उसकी कोख का जाया होता तो, उसके ऐसा करने पर वह थप्पड़ मार मार कर उसका मुंह लाल कर देती"

और यह बात भी उतनी ही सच है कि कालिंदी ने रमेश को भले ही अपनी कोख से जन्म न दिया हो पर उसे अपने जाये बेटे के समान ही पाला पोसा और बड़ा किया है।

सच पूछा जाये तो भाग्य ने सबसे बडा मजाक तो कालिंदी के साथ ही किया है, एक वही तो है जो इस सम्पूर्ण घटना क्रम मे ठगी गई है कभी अपने मन के हाथो और कभी दूसरे के हाथो। वहा वह जयपुर के उच्चकुलीन परिवेश म पली, सुख-सम्पन्नता से परिपूर्ण यौवन की रसमयी गगरी छलकाती, रूप, रस, गध से परिपूर्ण एक खिलते हुये पुष्प के समान पल्लवित हो रही थी। डॉ राकेश का उसके जीवन मे आना एक तूफान था जो उसके मन के किनारो को झकझोर गया था। राकेश की विषम पारिवारिक परिस्थितियो से अवगत होने पर कालिंदी उनके प्रति सहानुभूति से अन्दर तक द्रवित हो गई थी और इसी सहानुभूति ने उसके जीवन मे प्रणय का बीजारोपण कर दिया।

प्रेम का आवेग इतना तीव्र था कि वह अपनी जाति पाति वश मर्यादा, को भूलकर भविष्य के परिणामो से अनभिज्ञ राकेश के साथ अनजान डगर पर चल पडी, कितना समझाया था कर्नल साहब ने—

"बेटी तुम जिस रास्ते पर चल रही हो वह रास्ता काटो से भरा है, कहीं तुम्हारा यह कदम तुम्हारी माग मे सिन्दुर की जगह अगार न भर दे"

वह यह भी जानते थे कि राकेश का भरा पूरा परिवार है, उसकी पत्नी और दो बच्चे हैं, कालिंदी का कदम उनके सुख भरे ससार म आग लगा देगा और कहीं उनका अभिशाप उनकी बेटी को लग गया तो वह जीवन म सुख का एक क्षण प्राप्त करने के लिय तरसती रहेगी पर कालिंदी राकेश के प्रेमपाश मे इस प्रकार आबद्ध हो चुकी थी कि बाबूजी की सलाह उसे चुभती सी जान पडी थी, उसके विवेक को जैसे पाला मार गया था, वह दिन रात इन्ही सुख स्वपनो म खोई रहती—

"वह राकेश के साथ सुखमय ससार बसायेगी,

उसकी पत्नी को अपनी बडी दीदी तथा उसके बच्चो को राकेश की आत्मा का अश समझ कर त्याग की जीवित मतिमान प्रतीक बन जायेगी,

अपने अहम का सुख वैभव को तृणवत ठोकर मार देगी केवल इसलिये कि राकेश सुखी रहे।'

कालिंदी के अतमन से वह दृश्य अभी भी विस्मृत नही हुआ है जब उसने कार से उतर कर डॉ राकेश के घर मे पहली बार प्रवेश किया था न कोई परम्परागत रस्म न कोई औपचारिकता का निर्वाह किया गया। उस समय

यही रमश (राजू) केयल सवा साल का था।

वह जानती थी कि यह मातृत्व सुख से जीवन भर वंचित रहेगी क्योंकि राकेश ने पहले ही यह स्पष्ट कर दिया था कि उन्होंने परिवार नियोजन के तहत आपरेशन करवा लिया है। इसलिए वह उसे मा बनने का गौरव प्रदान नहीं कर पायेगा।

इस सत्य को अंगीकार करते हुए कालिंदी ने राजू को कसकर अपनी छाती से चिपका लिया था और बड़ी दीदी के पैरों को अपने आंचल से स्पर्श करती हुए कहा था—

' दीदी राजू आज से मेरा है,

उसका सुख दुख, हसना-रोना सब मेरा है। अब तुम इसकी चिंता छोड़ दो।

तुम वसे भी बीमार रहती हो, इसलिए राजू की जिम्मेवारी अब मेरी है।"

यह सुनकर रमेश की पहली पत्नी ने एक गहरी श्वास ली थी,यह श्वास निश्चिंतता की थी या इस दुःख की कि उसका अधिकार छीनने वाली दूसरी आर आ गई है, इसे कालिंदी माप न सकी।

लेकिन उस दिन से लेकर आज तक कालिंदी ने कभी सौत को सौत नहीं समझा, उसे बड़ी दीदी समझकर ही सम्मान दिया है। उसने अपनी पढ़ाई में कोई व्यवधान नहीं उपस्थित होने दिया। परीक्षा देने जाती तो भी दीदी का पैर छूकर जाती वह उसे आशीर्वाद देती या श्राप यह तो विधाता ही जाने।

लगभग बीस वर्ष होने को आय,राजू 21 वें वर्ष में कदम रख चुका है, तब से आज तक कालिंदी अपनी ममता का अक्षय कोष दोनों हाथों से उस परिवार के सदस्यों पर लुटाती रही है। सर्विस करती जो भी वेतन आता, सब बच्चों पर परिवार पर खर्च कर देती। देवर के ब्याह में राकेश की बेटी के विवाह में उसने जी खोलकर अपने अरमान इस तरह पूरे किये थे कि लोगों ने यहां तक कह दिया था —

"पराये जायों के लिये इत्ता मर खप रही हो अपनी कोख का जाया होता तो पता नहीं क्या करती '

कहने वाले तो यहा तो यहा तक कह देते—

"अरे तू इनके लिये अपने आपको मिटाये डाल रही है कुछ अपने लिये भी तो सोच,

आजकल तो अपनी औलाद भी बुढ़ापे मे सहारा नही देती यह पराये जाये है, इनका क्या भरासा"

पर कालिदी ने जसे इन सब प्रश्नो को सुना अनसुना कर दिया था, उसे उस समय यह भान नही था कि यह लोक रीति है जो एक दिन सत्य होकर रहेगी।

और जब उसी बेटे ने,जिसे 20 वष तक अपनी स्नेह धारा से सींच सींच कर लहलहाते विकसित वक्ष के रूप म परिपक्व करने के लिये उसने अपनी खुशियो का होमायित कर दिया था, उसकी उपेक्षा करते हुए धक्का देकर उसके मातृपद को लाछित किया था और अपने बाबूजी का अनादर करते हुए उनके प्राण तक लेने का प्रयत्न किया था, तब कालिदी को यथाथ का बोध हुआ था।

उसने निश्चय कर लिया था कि वह इनसे दूर चली जायेगी, और आज भरे पूरे परिवार के रहते हुए कालिदी ने अपना स्थानातरण अयत्र करवा लिया है। इतने सदस्यो के होने पर भी आज कालिदी निर्वासिनी का जीवन जीने के लिये विवश है। वह परिवार से चाहे कितनी ही दूर चली आये पर पति की सुरक्षा की चिंता उसे हर समय रहती है वह चाहती है—

उनका जीवन सुखमय हो,

ईश्वर बेटे को सद्‌बुद्धि दे

और वापस उस घटना की पुनरावृति न हो।

अवकाश के दिनो म या परिवार के किसी मागलिक कार्यों म भाग लेने के लिए जब उसे बुलाया जाता है तो वह अपना कतव्य समझ कर सारे काय करती है

एक अनजान सा भय उसके हृदय मे छिपा रहता है कि कही कोई अप्रिय घटना न हो जाये, जिसके लिये उसे जिम्मेवार ठहराया जाये, उसमे अब और अधिक आघात सहन करने की क्षमता नही है।

कालचक्र

तूफान एक्सप्रेस बहुत तेज रफ्तार से चली जा रही थी, गाड़ी की खड़ खड़ में कुछ भी शोरगुल सुनाई नही दे रहा था। रात्रि के नौ बजते ही लोगो ने अपनी सीटों से बैडिंग लेकर,बिस्तरे लगाने शुरु कर दिये थे,जिनका आरक्षण नही था वे भी दरी या चादर बिछाकर नीचे अपनी व्यवस्था करने में लगे हुये थे। स्टेशन आने मे थोड़ी देर थी।

ड्राईवर अजय बार बार घूर कर ग्रीन सिगनल देख रहा था,पर सिगनल था कि दिखाई नही पड रहा था। बार बार आखें मलता, चश्मा साफ करता, फिर आखो पर लगाता पर सिगनल था कि दिखाई नही पड रहा था। आज उसने एक मिनट के लिये भी विश्राम नही किया था, इसलिये थकान कुछ ज्यादा ही हो रही है, पर वह इस बात को भी अच्छी तरह जानता है कि इस समय उसकी जरा सी भी चूक सकडो लोगो के प्राण सकट में डाल सकती है इसलिये वह सचेत है अपनी ड्यूटी के प्रति।

केवल कुछ घण्टे ही तो उसे ड्यूटी करनी है सिगनल देखते रहना है और गाड़ी चलना है।

जब कम्पाटमेन्ट के सारे लोग ऊघने लगेगे, तब भी वह गिद्ध की तरह सिगनल पर ही अपनी निगाह जमाये देखता रहेगा।

ट्रेन के गतव्य स्थान पर पहुचने के पश्चात यात्री अपने घर जाकर थकान मिटाकर सुख की सास लेगे, लेकिन अजय जब रिटार्यरिंग रूम में पहुच कर यह सोचता है कि वह कुछ उल्टा सीधा खाकर पड जायेगा तो खाने का जी भी नही करता, अक्सर बिना खाये ही अधलेटा सा हो जाता है।

अगर देखा जाय तो अजय के लिए सर्विस में कोई आकर्षण नही रह गया है सर्विस तो क्या सच पूछो तो जिन्दगी में ही कोई आकर्षण नही रह गया है और फिर ये कोयला भाबू नौकरी।

रिटार्यरिंग रूम में लेटे लेटे अजय के सामने अतीत का वह पृष्ठ खुलने लगता है, जब वह महानगर के इगलिश स्कूल में पढता था। बचपन में वह सबसे

जीनियस समझा जाता था। पढाई लिखाई म खेलकूद म सबसे आगे। पापा हमेशा कहते--

इसका तेज दिमाग इसे किसी अच्छी पोस्ट पर जरूर पहुचायेगा। मेरे सपनो को यही साकार करेगा"

किसी भी बात की तह तक पहुचना, अजय की आदत म शामिल था। जब सब भाई मिलकर कोई नई पिक्चर देखकर आते तो खाने पीने की सुध छोडकर घण्टा उस पर बहस करते।

बगला पिक्चर ता वह कोई भी हो कैसी भी हा, छोडता ही नही था। वह बगला सस्कृति की इतनी अधिक प्रशसा करता कि अक्सर उसका तक सुनकर हम वह सोचने को विवश हो जाते कि वह अपनी जाति की लडकी से शादी न करके अवश्य किसी बगाली लडकी का ब्याह कर घर ले आयेगा पर किसे पता था कि उसे भीष्म पितामह की तरह आजीवन ब्रह्मचारी रहना होगा।

भीष्म को इच्छा मृत्यु का वरदान ता मिला था पर अजय तो अपनी इच्छा से मर भी नही सकता उसे तो ससार म जीवित रहना ही होगा, उन स्नेहीजना के लिए अबोध शिशुआ के लिए जिनका एक मात्र आश्रय वही केवल वही है।

जब भी उससे कहा जाता--

"भइया अजय शादी कर लो, सुख पावोगे एक स एक अच्छी लडकियो के रिश्ते तुम्हारे लिये आ रहे है।

तो अजय तपाक से उत्तर देता--

'मेरे लिए क्या सुख और क्या दुख।

मेरे लिये नौकरी करना मजबूरी है, इसलिये कर रहा हू, नही तो मैंने कभी सर्विस करने की बात भी नही सोची थी।

वैसे यह बात बिलकुल सही थी, न अजय के बाबूजी अचानक गिर पडते न उसके ऊपर ये शामत आती। पर मे फ्रैक्चर होने के कारण दो तीन मास बाबूजी को हास्पिटल मे रहना पडा, जब ठीक हुये तो छडी लेकर चलने लगे, तब कैसे हर्षोत्फुल से होकर घर घर मिठाई बाटी थी उन्होने।

छोटा अमय जब घर से भाग गया था तो किस प्रकार चार दिन तक पागलो की तरह सारे शहर म ढूढते रहे थे। हास्पिटल, थाने म सब जगह तलाश की, अजय की मा रो रोकर हलकान हो गई थी, उस समय अमय सिर पर हीरो जसे लम्बे लम्बे बाल रखता था और जब कोई उससे बाल कटवाने को कहता तो झुझला कर कहता—

"मेरे क्या बाप मर गये है, जो बाल कटा दू" उसके मन म यह बात बैठा पाना बहुत मुश्किल था कि बाल कटवाना तहजीब म शामिल है, नही तो चेहरा रूखा और उदास लगता है। जब अजय घर वापिस लौटा था ता बाबूजी ने फिर सब जगह मिठाई बाटी थी।

छोटी से छोटी खुशी को भी सर्वाधिक महत्ता देना उनकी आदत मे शामिल था। छोटे बडे सभी सदस्यो के लिये यहा तक कि दूरस्थ सबधियो के लिये भी वे अपने स्नेह का अक्षय कोष निरन्तर दोना हाथो स लुटाया करते थे।

किसी को नौकरी दिलानी हो, नये सिरे से बसाना हो, कलकत्ता महा नगरो मे अगर किसी को ठहरने का ठौर ठिकाना न मिले ता उनका क्वाटर सबके लिये ऐसे आश्रय स्थल के समान था जहा सब एक ही सघन वृक्ष की छाया तले आकर विश्राम लेत थे।

कितने खुश होते थे, वे सबको इकट्ठे देखकर। उनका स्वय का परिवार तो केवल तीन बेटा तक ही सीमित था पर अन्य रिश्तेदारो के परिवार के बच्चे भी उनसे बेटा जसा ही स्नेह प्राप्त करते थे।

अपने घर ठहरने वालो को वे रात मे उठ उठकर कम्बलें और चादरें ओढाते, हर एक का सामान व्यवस्थित करते, नई नई चीजें बनाने का प्रस्ताव रखते, रोज नये नये स्थानो पर घूमने का कायक्रम बनाते। सबको एक छत के नीचे देखना ही उनकी इच्छा थी।

अपनी इस इच्छा का मूत रूप देने के लिए उन्होने एक बहुत बडा क्वाटर लेने का मानस बनाया था ताकि महानगर म आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को रहने का स्थान देकर अपनी ममता का कण कण बाट सके। पर काल के क्रूर हाथो ने अकस्मात अजय स बाबूजी के स्नेह की छत्रछाया छीन ली।

एसे स्नेह विगलित पिता के घर मे अजय ने द्वितीय सतान के रूप म जन्म लिया था। अगर बाबूजी असमय ही काल कलवित न होते तो शायद यह इजन ड्राइवरी उनकी जिन्दगी का पर्याय न बनती।

अभी अजय पितृ अभाव से उबर भी न पाये थे कि मां भी उसी डगर की ओर चल पड़ी जहा से कोई लौट कर नही आता ।

मातृ पितृ विहीन दोनो भाई हर समय उनका मुह जोहत रहते थे, उनके लिये वही मा और बाप थे, बड़ा भाई था लेकिन बिलकुल शाह खर्च, ठीक बाबूजी की राह पर चलने वाला ।

यह ठीक है कि अम्मा बाबूजी कुछ बक बैलेंश छोड़कर स्वर्ग सिधारे थे पर दिन रात खुले हाथो से खर्च करने से कारू का खजाना भी खाली हो जाता है और यह कौन सी अरबो की सम्पति थी,

अजय स्वय तो इतना मितव्ययी था कि अपने ऊपर एक पैसा भी खर्च करना उसे फालतू लगता था, कशठर हाथ से निकल न जाये फिर तो रहने की भी समस्या हो जायेगी । इसलिये सर्विस भी विवश होकर करनी पड़ी थी पर अम्मा बाबूजी की असामयिक मौत ने उनके हृदय के अन्दर इतना सूनापन एव रिक्तता भर दी थी कि व अन्दर तक हिल उठे थे, अक्सर कहते—

"पता नही लोगो के मां बाप इतने बूढ़े होकर भी कसे जीवित रहते है?

हमारे तो अम्मा बाबूजी हम इतनी जल्दी छोड़कर चले गये,

क्या हमारे ऊपर ही यह दुख का पहाड़ टूटना था ?

उस समय उन्ह चाहे कोई कितना ही क्यो न समझाता पर जिन्दगी का कोई फल सफा उनकी समझ मे नही आता था, वे ईश्वर तक को गुनहगार समझते थे, जिसने उनके सिर से ममता का साया इतनी जल्दी उठा लिया था

हर समय चेहरे पर दोनो हथेलियो का टिकाय अजय गहरी चिंता म डूबे रहत, हसी ने तो जसे उनके जीवन से हमेशा के लिए विदा ले ली थी ।

चिंता थी बच्ची गृहस्थी की, जो बिना किसी स्त्री के रह बिखर रही थी । घर मे ऐसी कोई भी औरत थी न ना कोई बहन, जो तीनो भाइयो को दो रोटी भी बनाकर खिला सके ।

काश उनकी कोई छोटी बहन होती, बहन है तो सही, सगी न सही मौसेरी तो थी ही । पर उन्होने उसे सगी ही समझा था और वह भी उन्हें कब पराया समझ सकी थी । पर वह इतने दूरस्थ प्रात मे बठी थी कि मौसी की

मौत का समाचार भी उसे न मिल पाया था और वह अपने भाइयों के अश्रुबिंदु मे दो बूंद अश्रु मिलाने से भी वंचित रही थी। इसलिये अजय का यही प्रयत्न रहता थि—

"किसी तरह बड़े भइया की शादी हो जाये उनका घर बस जाये,

अपनी शादी का ख्याल तो उन्होने हमेशा के लिए हृदय से निकाल दिया था। जिस रिश्तेदार के यहा भी अजय जाते, केवल एक ही बात छेड़ते—

"बड़के भइया का ब्याह हो जाय तो मेरी ड्यूटी पूरी हो जाये, कम से कम घर तो सभालने वाला कोई आ जाय"

अजय का प्रयास रग लाया, बड़े भइया की दुलहिन के घर आते ही घर जैसे सवर सा उठा। वैसे भी स्त्री के हाथ से सजा सवरा घर कुछ ज्यादा ही सुन्दर लगता है। घर करीने से और व्यवस्थित रहने लगा, हर समय हसी के कहकहे गूजने लगे। पर वह एक क्षणिक सुख स्वप्न था, जिसने कुछ ही दिनो मे भयकर दुस्वप्न का रूप ले लिया, एसा लगता है कि, ईश्वर से भी उस घर का सुख न देखा गया, इसीलिये जब अजय को ड्यूटी पर लोको आफिस से यह समाचार मिला कि—

'बड़े भइया नही रहे

जल्दी चले आओ'

तो वे वही पर सिर पकड़ कर बैठ गये थे, उन्हे अपने चारो ओर अधेरा सा घिरता नजर आया था—

"हे भगवान क्या यह कहर मुझ पर ही बरसना था,

पहले बाबू जी फिर अम्मा और अब बड़े भइया'

अन्त समय दोनो भाइयो को मिलना भी नसीब नही हुआ था, जबकि वे दोनो जहा भी जाते, इकट्ठे ही जाते थे।

यह सही था कि दोनो भाइयो मे गाहे बगाहे तकरार हो जाती थी, तर्क वितर्क सब चलते थे। दोनो ने लम्बा समय एक साथ बिताया था। उन मातृ-पितृ विहीन भाइयो ने सुख दुख आधी तूफान झझावात सब मिल कर झेला था।

बड़े भइया की मृत्यु पर अजय का जार-जार रोते हुए दीवारो एव दरवाजो से सिर टकराना इस बात का सकेत था कि बड़े भइया उनके लिय कितना बडा अभाव छोड गये हैं और इस दद के तूफान का वे अपने अन्दर कैसे समा सकेंगे पर दोनो छोटे भतीजे जो भइया की निशानी समझकर अपने सीने मे लगाकर अजय ने दु ख के ज्वार को अन्दर ही अन्दर समेट लिया था । कितने दिन तो ड्यूटी पर ही नही गये हमेशा यही कहते—

"मन भारी है, ड्यूटी पर जाने की इच्छा नही करती"

पर ड्यूटी तो उन्हें करनी ही थी, उन नन्हे मुन्ना के भविष्य के लिए जो बडके भइया की उनके पास अमानत थी और जिसके लिये सारी उम्र हृदय पर पत्थर रखकर उन्हे जीना पडेगा ।

पर अजय ने दोनो भतीजो को पता नही किस देवी प्रेरणा के वशीभूत होकर इस सत्य से साक्षात्कार तो करा ही दिया था ।

"तुम्हारे पापा हमेशा के लिए दूर चले गये है, अब वह कभी नही आयेंगे"

और इस बोध को कराने के लिए ही वे भइया के दाह सस्कार के समय बच्चो को अपने साथ ले गये थे जहा उन्होने अपने बाबूजी को चिता मे जलते देखा था । अब जब भी कोई बच्चो के सिर के ऊपर सहानुभूति से हाथ फेरता तो व स्वय कह उठते—

'हमारे पापा मर गये, उनको आग म जला दिया'

जब कि उन अबोध बालको को मृत्यु जसे भयकर सत्य से साक्षात्कार कराना एक कठोर काय था । पर अजय ने उनको परिस्थितियो से सघर्ष करने के लिए बचपन से ही यथार्थ से उनका परिचय करवा दिया था ।

आज जब अजय अतीत के आइने मे झांकता है, तो लगता है, सुख के एक क्षण का रसास्वादन भी उन्होने अपने लम्बे जीवन में आज तक नही किया है । सारे सुख स्वप्न बालूका स्तूप की तरह ढह गये हैं ।

अक्सर भाभी से इसी बात को लेकर बहस छिड जाती है, जब वे दोनो अपनी जिन्दगी का लेखा जोखा करने बैठते हैं तो आवेश मे आकर एक दूसरे पर दोषारोपण भी करने लगते है । दुखी दोनो ही है, सवस्व दोनो का ही छिन गया

है। दाना ही हर समय ईश्वर व भाग्य को कोसते है पर अजय का दु ख सीमा तीत है तभी तो वे गुस्से मे आकर बोल पडते है—

"आपका क्या गया अरे भइया चले गये तो क्या, उनकी निशानी के रूप मे य बच्चे तो आपके पास हैं

आपको जीने का सहारा तो मिल गया पर मेरे तो सुख दुख का भागी दार बडा भाई था, वही ईश्वर ने मुझ से छीन लिया"

अजय भइया हर एक बात मे बाल की खाल निकालने लगे है अगर भाभी के पीहर वाले उनकी जरा सी भी आर्थिक सहायता करते है तो अजय को अपमान व उपेक्षा का अहसास होता, अगर भाभी का छोटा भाई कर्तव्य वश कुछ ज्यादा बहन और बच्चो के लिए कर भी देता तो अजय को ऐसा प्रतीत होता मानो वह दया या सहानुभूति वश ऐसा कर रहा है उन्हें ऐसे कृत्य झूठी सहानुभूति प्रदर्शित करते लगते है और इसीलिये व सारा आक्रोश भाभी के सामने व्यक्त करते बहने लगते है—

"मैं आप लोगो के लिये दिन भर मरता खपता रहता हू

आपको हर महीने खर्च के लिए बच्चो को पालने के लिए मासिक वेतन लाकर देता हू, फिर भी आप दूसरो का एहसान लेती है।' भाभी को यह बातें अच्छी नही लगती, वह भी क्रोधावेश मे आकर बडबडाने लगती—

'क्या हुआ अगर मेरे भाई न कुछ दे दिया तो ?

अरे समथ है मेरा भाई, अच्छा खाता कमाता है अगर थोडा बहुत मेरे और बच्चो के लिए कर भी दिया तो कौन सी आफत टूट पडी ?"

पर अजय का जीवन दुख के बोझ से इतना अधिक बोझिल हो चुका है कि सारा ससार ही विषमय लगता है। अपनी व्यथा का शब्दो के माध्यम से मुट्ठिया तान तानकर वह व्यक्त करता है पर व्यथा का अन्त नही।

अजय की इस व्यथा को बाटने वाली एक मात्र बिन्दा मौसी ही है जो अपनी बहन की निशानी को अपना समझ कर उनके दुखते घावो पर मरहम रखती है।

वे भी बीमारी म इतनी जजर हो चुकी हैं कि बिस्तर पर पडे रहना ही उसकी नियति बन चुकी हैं।

जब भी अजय उनके सामने दुख से विचलित होकर फफक पड़ते है और अश्रुपूरित नेत्रो से सवाल पूछते है –

"बताइये मौसी जी मैं क्या करूं ?

क्या मैंने अपनी तरफ से कोई कोर कसर छोड़ी है ?
तो भी परिवार मे सुख शांति नही है।

मेरी बुद्धि काम नही करती कि मैं क्या करू।"

सबसे ज्यादा चिंता तो उन्हे उस छोटे भइया अभय की है, जो अम्मा बाबूजी के न रहने से मूक बधिर की तरह इधर उधर भटकता है, थाली परोस दी तो रोटी खाली नहाने को कहा गया तो नहा लिया, जीवन के प्रति कोई उत्साह या लगाव उसमे शेष नही रह गया है।

अजय अपने दुख से दुखी तो है ही, पर अभय की चिंता उन्हे ग्रस्त किये हुये है, वे उदास होकर अक्सर मौसी से कह उठते है—

मौसी अगर मैं न रहा तो इस बेचारे का क्या होगा ?

कौन पूछेगा इसे ?

यह अपनी मूकता का भार कब तक ढोता रहेगा ? यह तो स्वय एक जिन्दा लाश है इसकी उपेक्षित जिन्दगी का भागीदार कौन बनेगा ?

क्या विधाता की क्रूर दृष्टि से इसे कभी मुक्ति मिलेगी ? क्या मैं चैन की सास लेकर जीवन के अन्तिम क्षणो मे अपने उत्तरदायित्व को पूरा कर सकूगा ?

"मौसी जी मेरी अतिम इच्छा यही है कि, मृत्यु से पूर्व मुझे यह विश्वास हो जाये कि अभय का जीवन सुरक्षित है और ससार मे कोई और उसके भी सुख दुख का भागीदार है"

यह कहते कहते अजय निढाल सा होकर मौसी के सामने रो पड़ता है।
उस समय बिन्दो मौसी ही अपनी शारीरिक पीडा को विस्मृत कर अजय को सान्त्वना देती हुई कहती है—

"अजय तुम्हें जीवित रहना ही होगा,
आत्महत्या ससार से पलायन है,

परिणति

जीवन के उत्तरार्द्ध की राह पर खड़ी शकुन सोच नही पा रही है कि उस इन वर्षों म क्या उपलब्धि हुई ? मुड़कर अतीत के आइने मे झांकती है तो पाती है अपने आप मे उस तेरह वर्षीया बालिका का रूप जिसे गुड्डे गुड़ियो की तरह छोटी आयु मे ही ब्याह दिया गया था, किशोर वय के भास्कर के साथ और जिसको भावरे पड़ते समय रोशनी की जगमगाहट में अग्नि के फेरे लेते समय उसने एक हल्की सी झलक भर देखी थी।

उस समय उसके लिए विवाह का कोई अर्थ भी तो नही था, केवल अच्छे अच्छे कपड़े पहनना, गहने पहनकर सजना सवरना एक मात्र कौतुक ही तो था उसके लिये अपना ब्याह।

धीरे धीरे उसमे समझ आती गई थी, कैशोर्य उन दोनो के बीच से जैसे छलांग मारता निकल गया था, भास्कर के सम्पर्क मे आने से वह बालिका से वधु बन गई थी, पाच वर्ष के अन्तराल मे ही बहुत जल्दी दो सुन्दर से फूल उसके उपवन म खिल उठे थे और जीवन बहुत मधुर गति से चल रहा था। पर वह दिन शकुन के जीवन मे भयकर भूचाल लेकर आया, जब एकाएक उसे टेलीग्राम मिला–

"भास्कर की हालत ठीक नही है, जल्दी चले आवो"

कुछ मास पहले ही तो भास्कर अपने बड़े भाई के साथ बम्बई के लिय रवाना हुआ था बहुत समझाया था सबने—

"यही कोई छोटी मोटी नौकरी करलो, परिवार के साथ रहोगे"

पर भास्कर ने यह कहकर सबका चुप कर दिया था —

"महगाई बहुत बढ गई है, बच्चा के होने से खर्च भी बढ़ गया है। अच्छी सर्विस मिलने पर ही इनको उचित शिक्षा दे पायेंगे और इनकी आवश्यकताये पूरी कर सकेंगे" —

जब शकुन ने अपनी सहमति न देकर रुकने का आग्रह किया था तो

उसे यह दिलाशा देकर भास्कर ने शांत कर दिया था—

"वहां जाकर जैसे ही जम जाऊंगा, सब कुछ व्यवस्थित होते ही तुम सबको बुला लूंगा"

"पर कहां बुला सका था भास्कर शकुन को अपने पास, उसे क्या पता था कि उसके लिये मौत का बुलावा आ पहुंचा है। वैसे जिस समय वह विदा होकर बम्बई जा रहा था, उसी समय कुछ अपशकुन की छाया सी उसे सामने दिखाई पड़ने लगी थी। जब बड़े भाई के साथ विदा लेकर वह घर से निकला उसी समय लोगों ने टोकते हुए कहा था—

'एक मां के जाये दो सहोदर भाई साथ साथ विदा नहीं होते अपशकुन होता है।

पर उस समय उन दोनों ने इन बातों को अंधविश्वास कहकर नकार दिया था, लेकिन आज वह सारी घटनायें चित्रवत उसके सामने स्पष्ट हो रही थी।

तार की भाषा पढ़ते ही उसका सारा शरीर पत्ते की तरह थर-थर कांपने लगा और वह किसी अनजान भय से आशंकित होकर जहां खड़ी थी वहीं पर धम्म से बैठ गई।

कुसुम और सपन दोनों बच्चों को मां के पास छोड़कर, जब वह भइया के साथ बम्बई पहुंची तो वहां उसे भास्कर का मृत शरीर ही दृष्टिगत हुआ था उसकी वे शरारती चुहल सी करती आंखें हमेशा के लिये बन्द हो चुकी थी। विक्षिप्त सी होकर वह गिर पड़ी थी उसके ऊपर।"

उसके भाग्य में विधाता ने जो वधव्य का दुख लिख दिया वह तो उसे भोगना ही पड़ेगा"

यह समझाकर सबने उसे सांत्वना दी थी। वह भी ऊपर से शांत हो चली थी, पर उसके शरीर के अन्दर जो यौवन का ज्वार उत्ताल तरंग मार मार कर उसे आलोड़ित कर रहा था उसमें अपने आपको समाल पाना बहुत मुश्किल था।

जब वह अपनी उम्र की हमजालियों को तीज और करवा चौथ पर रंगीन लाल पीली जरी की साड़ी पहने सजी सवरी देखती तो उसके कलेजे में हूक सी उठने लगी।

उसे तो बार बार यही याद दिलाया जाता कि यह विधवा है, सजना सवरना उसके लिए ठीक नहीं, समाज के लोग क्या कहेंगे, पर कैसे समझाये वह अपने हृदय को। उस समय वह भास्कर की तस्वीर के सामने जा खड़ी होती और उससे अनगिनत प्रश्न पूछती जो निरुत्तर ही रहते—

"क्यों चले गये तुम मुझे इस तरह छोड़कर ?

तुमने तो जीवन भर साथ निभाने का वादा किया था ?

फिर मुझे इस तरह भटकने के लिये क्यों छोड़ दिया ?" उसे इस तरह रोते बिलखते देखकर कुसुम और सपन उसके इर्द गिर्द बांहों का घेरा डालकर उससे लिपट जाते, जिनका कोमल स्पर्श उनके शैशव की भोली शरारतों से रम-कर वह अपने दुख को भूल जाती उनको देखकर वह अपने भविष्य के प्रति आश्वस्त हो उठती।

वह अकेली कहा है, भास्कर की निशानी है उसके पास? वह इन्हें ऊची से ऊची शिक्षा दिलायेगी, उनके भविष्य को उज्जवल बनाने के लिए उसे साहस से काम लेना होगा और तब शकुन ने अपने जीवन के बारे में एक नया निर्णय ले लिया।

अल्पायु में ही विवाह हो जाने के कारण उसने जिस पढाई को छोड़ दिया था, उसी को वापिस फिर शुरु कर दिया।

समय गुजरता जा रहा था और समय ने उसे इतना ज्ञान अवश्य दे दिया था कि उसे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना ही पड़ेगा।

कब तक वह ससुराल वालों और मायके वालों पर बोझ बनी रहेगी ?

कब तक वह अपनी और अपने बच्चों की छोटी मोटी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये दूसरों का मुंह ताकती रहेगी।

इसलिये उसने पहले आठवीं की परीक्षा प्राइवेट पास की फिर हाईस्कूल परीक्षा का फार्म भर दिया। हालांकि यह सब करना कोई सरल बात नहीं थी, जब वह साइकिल पर चढ़कर परीक्षा देने स्कूल जाती तो कई जोड़ी निगाह उसे देखती रहती। आपस में कानाफूसी करती रहती, क्योंकि उसके युग की परम्परा नहीं थी कि विधवा वह स्कूल में पढ़ने जाये और वह भी साइकिल पर सवार होकर।

स्वय उसके सास ससुर भी उसके साथ से प्रसन्न न रहते अगर कोई उससे मिलने के लिए आता और उसके बारे मे पूछता—

"शकुन कहां गई ?

कब तक आयेगी,

घर पर जब मिलगी"

कोई हमसे पूछ कर जाती है क्या ?

उनकी तो मान्यता यही थी कि उसने पिछले जन्म मे कोई बहुत बड़ा पाप किया था, इसलिये उसे वैधव्य का दुख भोगना पडा और उसे घर की चार दीवारी मे ही घुट घुट कर मर जाना चाहिये, बाहर निकलना उसके लिये वर्जित है।

उसे पग पग पर कितना लाछन और अपमान सहन करना पडता था उसके पास धन तो नही था कि वह दूसरो की सहायता कर सके पर जहा तक हो सके वह शरीर से सबकी सेवा के लिये तैयार रहती थी, लेकिन लोग इसका भी गलत अर्थ निकालते थे। अगर किसी स्त्री के पति से वह हसकर दो बातें भी कर लेती तो उन्हे लगता कि जैसे उनके पति को बस म करने का षडयन्त्र रचा जा रहा है। दूसरो के सामने वह स्त्रिया यह कहने म नही चूकती कि

इसने तो मेरे पति पर जादू कर दिया है

इसके कारण हमारी जिन्दगी नरक बन गई है

अपने पति के आशिकाना मिजाज पर पर्दा डालकर वह उसे ही दोषी ठहराती वह चाहे कितनी ही निष्कलक क्यो न हो पर उसे अनेक अश्लील व्यग्य बाणो का शिकार होना पडता।

बदलते समय ने जीवन के घात-प्रतिघात ने शकुन म एक नया आत्म विश्वास उत्पन्न कर दिया था, वह अपने जीवन को तिल तिल करके जलता नही देखना चाहती थी, इसलिये उसके मार्ग म अनेक व्यवधान आने पर भी उसने पढाई का क्रम जारी रखा।

ऊची शिक्षा प्राप्त करके उसे नियमो के तहत नौकरी भी मिल गई, हालाकि इसके लिए उसे जी-तोड परिश्रम करना पडा था।

उसने कुसुम और सपन का भी अच्छे स्कूल मे प्रवेश दिलाकर सदा पढने के लिए प्रेरित किया। बच्चो को पिता की कमी महसूस न हो इसके लिये वह आवश्यक प्रयत्न करती रही।

दोनो बच्चे भी यथार्थ से परिचित हो चुके थे, पढाई उनके जीवन का पर्याय बन चुकी थी। उनके मानस से यह भावना घर कर गई थी कि उन्हे ऊंची शिक्षा प्राप्त कर उन्नति के उच्च सोपान पर पर पहुचना है।

इसी की परिणति है कि आज सपन डाक्टर बन गया है एव कुसुम एक अच्छी युवा लेखिका के रूप मे ख्याति प्राप्त कर रही है।

जिस शकुन को नारी जाति उपेक्षा की दृष्टि से देखती वही आज नारी निकेतन की सस्थापिका, महिला मण्डल की अध्यक्षा बन चुकी है। नारी शिक्षा और समाज सेवा के हर क्षेत्र म शकुन सक्रिय रूप से कार्य कर रही है।

आज शकुन से मिलकर सभी को सुकून मिलता है। किसी भी वर्ग की नारी को जो असहाय है उसे आर्थिक रूप से आत्म निर्भर करना शकुन के जीवन का लक्ष्य बन चुका है,

वह अपने लिय जीवित नही है उसने नारी जाति का शोषण मुक्त करने का सकल्प लेकर उसके उत्थान के लिय अपना जीवन समर्पित कर दिया है।

बाल विवाह, बेमेल विवाह, वृद्ध विवाह जैसी कुरीतिया जिसम नारी जाति का शोषण होता है और जो मातृ शक्ति के लिए कलक है उनका विरोध करना ही उसका धर्म एव कर्म है।

दहेज की बलिवेदी पर जिन मासूम कलियो को आहूत होने के लिये विवश किया जाता है, शकुन उनका सम्बल है। उसकी दृष्टि अब स्वकेन्द्रित नहीं रहा विस्तृत असीम आकाश तक उसके डैने फैल चुके है।

कल तक जो शकुन उपेक्षित और प्रताडित थी, असहाय और अनाथ थी आज अपनी श्रम साधना, सच्ची लगन, निस्वार्थ निष्काम सेवा से नारी जाति के लिए आदर्श है।

संत्रास

आज वे फिर उसके मोहल्ले में आये थे ? सफेद झक कपड़े पहने हुए, चेहरे पर सहानुभूति का मुखौटा लगाये, विनम्र मुद्रा में हाथ जोड़ते हुए वे लोग फिर उसके घर के सामने खड़े थे।

पांच वर्ष पहले भी वे इसी तरह आये थे वही आश्वासन, दिलासा के चार छिछले संवाद दोहराते हुए—

'हम आपके और जनता जनार्दन के सेवक हैं। हमसे जो बन पड़ेगा हम आपके लिये अवश्य करेंगे।

हमें एक अवसर तो दीजिये।

हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि आपकी हर समस्या के लिये विधान सभा और संसद में आप लोगों के प्रतिनिधियों, नेताओं, विधायकों एवं सांसदों के जीवन में आज तक कोई भी बदलाव नहीं आया, अपितु उनके वैभव और ऐश्वर्य में उत्तरोत्तर प्रगति ही होती रही है, उनके घर कोठियों में बदल गये हैं और कोठियों ने आलीशान, आधुनिकतम सुख सुविधाओं से युक्त बंगलों का स्थान ले लिया है उनके खेत आज फार्म के नाम से जाने जाते हैं जहां गरीबों का शोषण और बंधुआ मजदूर मजबूर देखने को मिलते हैं उनका जीवन ऐश्वर्य और भोग का पर्याय बन चुका है।

पर वज्रपात हुआ है श्रीमान पंकज और उसके परिवार के हर सदस्य को कमजोर कर रख दिया है।

वह गुहार कर रहे हैं, सहायता के लिए प्रार्थना पत्र भेज रहे हैं, समाचार पत्रों के माध्यम से अपनी स्थिति स्पष्ट कर रहे हैं पर उनकी दयनीय स्थिति पर कोई ध्यान नहीं देता।

कहां गये सारे वादे और आश्वासन देने वाले मुखौटे जिन्होंने संकल्प लिया था उनकी सुरक्षा का उनके अस्तित्व को बचाये रखने का और कष्टों को दूर करने का पर उन्हें कहां फुरसत है किसी को मुड़कर देखने की घावों पर मर-हम रखने की वे तो हवा के झोंके की तरह आये और आंधी की तरह चले गये।

श्रीमान पंकज का इकलौता पुत्र धीरज ■ मास से हास्पिटल मे पड़ा जीवन मृत्यु से संघर्ष कर रहा है । ■ बहनो का लाडला एक मात्र भाई धीरज जिसने अभी यौवन की देहरी पर अपने कदम रखे थे, जब वे पाच वर्ष पूर्व अपना हाथ जोड़े, मतदान की याचना के लिये उसके घर के सामने आ खड़े हुये थे, उस धीरज की चचलता वाकपटुता चेहरे की लावण्यता और व्यवहार कुशलता से केवल मोहल्ले के लोग ही नही अपितु आने वाले जन प्रतिनिधि भी प्रभावित थे । वह भी अपने किशोर वय के साथियो के साथ उनका चुनाव चिन्ह लेकर प्रचार करता, नारे लगाता, अदम्य उत्साह से परिपूर्ण था, तब उसे क्या पता था कि एक दिन इन्ही के सिद्धांत उसकी जान के ग्राहक बन जायेंगे ।

कैसी आंधी सी चली थी, सम्पूर्ण जनमानस उस झंझावात से प्रभावित हो गया था । सारे छात्र तीव्र आक्रोश से भर उठे थे ।

यह सही है कि निम्न वर्ग अनुसूचित जाति को नौकरी में आरक्षण मिलना चाहिये पर एक साथ खेलने और एक साथ पढ़ने वाले उन किशोर और युवा पीढ़ी के दिल और दिमाग में किसने जहर भर दिया था यह कौन जान सकता है ।

जो कल तक एक दूसरे के लिये मर मिटने को तैयार थे, एक दूसरे पर अपने प्राण न्यौछावर करने मे नही हिचकते थे वही परस्पर घृणा, उपेक्षा, प्रतिशोध की विषम ज्वाला मे जलने लगे थे ।

उनका यह आक्रोश चरम सीमा पर पहुंच गया था, जब छात्रो ने परीक्षा भवन मे परीक्षा का बहिष्कार कर दिया था, कापिया फाड डाली थी, फर्नीचर तोड डाले थे और इतने उग्र हो चुके थे कि किस समय क्या अप्रिय घटना घट जाये कहा नही जा सकता था । मुठ्ठी बाधे नारा लगाते छात्रो का यह विशाल समुदाय देखते ही देखते सड़को पर आ गया था ।

धीरज के माता पिता भी इधर कुछ दिनो से इस बात पर ध्यान रखे हुये थे कि आजकल धीरज अखबार की सुर्खियो को गौर से पढने लगा है दूरदर्शन पर अगर वह थोडी सी झलक भी छात्रो के आत्मदाह की देख लेता है तो उसका पूरा चेहरा लाल हो उठता है, वह बाबूजी से बहस भी करने लगता है—

"पिताजी हम लोगो का क्या होगा ?

हमारे भविष्य को अंधकार के गर्त मे ढकेल दिया गया है ?

क्या हम लोग यूनिवर्सिटी की उपाधि इसलिये प्राप्त करें कि मात्र हम शिक्षित समझा जाय ?

क्या हमें प्राप्त ज्ञान से आर्थिक लाभ जीवन में कभी नहीं मिलेगा ?

क्या हमारी शैक्षणिक योग्यताओं का मूल्यांकन हमारी उपेक्षा करके ही किया जायेगा ?

पिताजी यह अन्तर्द्वन्द न केवल मेरा है, अपितु मेरे ही समान भारत के करोड़ों करोड़ों शिक्षित युवाओं का है जिनके भविष्य के साथ सरकार ने घिनौना एवं अमानवीय व्यवहार किया है।

— धीरज बेटा तुम्हारा सोचना सही है, आज युवा पीढ़ी के सब्र का बांध टूट चुका है केवल राजधानी ही नहीं अपितु भारत के कोने-कोने से युवा शक्ति प्रदर्शन पर उतारू है, आत्मदाह की खबरें अखबारों के मुख पृष्ठ पर छप रही हैं,

लेकिन मेरे बेटे आत्मदाह आक्रोश की सही अभिव्यक्ति नहीं, यह तो समस्यों से भागकर आत्मदाह करना है, पलायन की यह प्रवृति मनुष्य के लिए अभिशाप है। जीवन का समाधान नहीं।

वे तो अपने जीवन से हाथ धो बैठते हैं, लेकिन जो लोग अपने सिद्धांतों पर अड़े हुये हैं वे इस बात को शायद भूल जाते हैं कि वे भी किसी के पिता हैं और एक बाप के लिए जवान बेटे की मौत के दुःख से बड़ा दुःख दुनिया में कुछ भी नहीं होता।

अक्टूम्बर मास की द्वितीय सप्ताह था सवेरे सवेरे धीरज घर से यह कहकर निकला था कि —

"कुछ जल्दी काम है दोस्तों से मिलना है, घंटे दो घंटे में वापिस आ जाऊँगा।"

उन्होंने उसके द्वारा कही गई बात को सहज रूप में ही लिया था। ऊपर से तो शांत दिखने वाले उस सुदर्शन युवा के अन्तर्मन में कैसा तूफान उठ रहा था, इससे वे भी परिचित थे।

दोपहर एक बजे तक मां खाने पर उसकी प्रतीक्षा करती रही, फिर यह सोचकर कि दोस्तों ने आग्रह पूर्वक कुछ खिला दिया होगा कोई अब तक भूखा थोड़े ही बैठा होगा उसने खाना खाकर रसोई को व्यवस्थित कर कुछ देर

विश्राम का मानस बनाया ही था, तभी एकाएक बहुत तेजी से कालबेल बजने की आवाज सुनाई पड़ी दरवाजा खोलने पर देखा दो छात्र घबराई हुई हालत

म दरवाजे पर खड़े थे उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थी वे जल्दी जल्दी भराई हुई आवाज मे बोले—

"आटी जी, आटी जी, धीरज जल रहा है,

बीच सड़क पर जल रहा है उसे बचा लीजिये ।

आटी, हमारे दोस्त को बचा लीजियेन आटी"

उनकी आखो से लगातार आसू बह रहे थे घर मे उपस्थित दोना छोटी बहना ने जब इस तरह सबको रोते हुये देखा तो वे भी कहने लगी—

"मम्मी तुम जाओ जल्दी जाओ, हमारे भइया को बचा लो मम्मी हम घर देख लेंगे आप जाओ न मम्मी"

धीरज की मा की आखा स अश्रुवर्षा हो रही थी, घबराहट म कुछ भी समझ मे नही आ रहा था कि वह क्या करे धीरज के पिताजी दफ्तर गये हुए थे उन्हे भी समाचार देना जरूरी था उसने जल्दी से फोन नम्बर मिलाकर फोन किया तथा स्थान बताकर कहा वही पहु चे—

'म जल्दी मे हू, आप भी वही पहुचे ।

हड़बड़ाहट मे इससे कुछ ज्यादा बोलने की गुजाइस भी नही थी वह जैसी हालत मे घर मे बैठी थी वैसी ही हालत म चल पड़ी, जल्दी बाजी मे रिक्शा ही हाथ लगा उसने दुगुने पैसे मागे पर इस समय पैसे कौन देखता है। जैसे ही वे उस स्थान पर पहुची उनकी आखे फटी की फटी रह गई, उसका इकलौता पुत्र धीरज जल रहा था पास ही कैरोसीन तेल का डिब्बा पड़ा था, उसका सारा शरीर बुरी तरह से झुलस गया था, पुलिस उसे बचाने की चेष्टा मे और जोर से पकड़े हुये थी लेकिन समय पर पहु च कर उसे जलने से रोक न सकी थी, उसके चारो तरफ लड़के घेरा बनाकर तीव्र आक्रोश प्रकट कर रहे थे ।

धीरज की मा न इसने पहल एक दो केश जलने के देखे थे जिनको देख कर वह सिहर उठी थी, लेकिन आज वो जो जल रहा था वह उनकी आत्मा का शरीर का अंश था वे बन्हवास सी होकर जोर जोर से छाती पीटने लगी—

"अरे बचाओ रे कोई, मेरे धीरज को बचाओ।"

अरे मुझे क्या पता था वो हम ये दिन दिखायेगा

हे भगवान मेरे धीरज को बचा लो'

धीरज के साथियों की आंखों से ज्वाला फूट रही थी, उनके नथुने फड़क रहे हैं और चेहरे की भावभंगिमा यह संकेत दे रही थी कि वे कुछ भी करने के लिये कृतसंकल्पित है। पुलिस के जवान बढ़ती हुई भीड़ को रोकने में अपने आपको असमर्थ पा रहे थे।

उसी समय धीरज के पिताजी दौड़ते भागते उसी स्थान पर पहुंचे गये। भीड़ को चीरते हुए 'धीरज, धीरज'' नाम पुकारते हुए उसके पिता जैसे जैसे धीरज के पास पहुंचने का प्रयास करते पुलिस का रेला उन्हें पीछे धकिया देता। भीड़ में कुछ छात्र ऐसे भी थे जो धीरज के साथ अक्सर उनके घर आते और उन्हें अच्छी तरह पहचानते थे उन्हीं में से किसी ने चिल्लाकर कहा—

"यह धीरज के पिताजी है यदि अब भी इन्हें रोकने का प्रयास किया गया तो पुलिस की जीप में आग लगा दी जायगी, और भीड़ पुलिस वालों से गिन गिन कर बदला लेगी"

इस आवाज के साथ ही एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया और उसके पिताजी दौड़ते भागते धीरज के पास पहुंचे ही थे कि इतने में पुलिस एम्बुलेंश में उसे बिठाकर मां के तथा दो दोस्तों के साथ उसे अस्पताल ले गयी। जब पिताजी हास्पिटल पहुंचे तो वहां इमरजेन्सी वार्ड में धीरज को झुलसी हुई हालत में देख कर अपने ऊपर नियन्त्रण न रख सके और जोर जोर से चिल्लाकर रोने लगे—

"ये तुमने क्या किया बेटे ?"

अरे अपनी मंशा कम से कम हम तो बताते ?

तुमको कितना समझाया था कि आत्मदाह पाप है, पर तुम भी उसे रास्ते पर चल पड़े।

अरे बेटा तुम्हीं तो हमारी आशा हो, बुढ़ापे की लकड़ी हो, कुछ हमारे बारे में भी तो सोचा होता।'

उधर धीरज की मां भी हिचकी बांध बांध कर रोये जा रही थी उन्हें चुप कराने के सारे प्रयास निष्फल हो चुके थे उनका जिगर का टुकड़ा आज इस

हालत म पड़ा था कि देखते ही कलजा मुह को आता था ।

धीरज बहोश था डाक्टरो का दल उसकी परिचर्या म लगा हुआ था । धीरज के माता पिता की कारुणिक अवस्था देखी नही जाती थी । हास्पिटल के सबसे बड़े डाक्टर ने मि पकज के कध पर हाथ रखते हुए कहा—

धीरज रखिय मि पकज, अपने होश हवास म आइये, हम पूरी चेष्टा कर रहे है आपके बेटे को बचाने की,

ईश्वर से प्राथना करिये कि आपका बेटा ठीक हो जाये ।"

धीरज इमरजेंसी वाड मे जीवन मृत्यु से सघष कर रहा था, बाहर सारा छात्र समुदाय उसका हाल जानने के लिये चिन्तित था लेकिन उनका आवग चरम सीमा पर था ।

उन्होने अस्पताल के मेनगेट का घेराव कर रखा था । प्रेस सवाददाओं फोटाग्राफरो का हुजूम उमड पड रहा था । पक्ष और विपक्ष के सभी नता उसको देखने के लिए उमडे पड रहे थे । लकिन छात्रो ने नेताओ का भी घेराव कर दिया था उन्हे अन्दर आने से तथा धीरज को देखने से रोक दिया था । कुछ लोग विवश होकर धीरज को बिना देखे ही चले गये थे, जो वहा आये थे वे आश्वासन दे रहे थे ।

"आपका बेटा बच जायगा मि पकज हम सरकार स आपको क्षतिपूर्ति करवायेंगे"

कुछ की आई पी लोगो न उसके लिय विशष प्रबन्ध करन का आश्वासन भी दिया । सब तरफ उसी के साहसिक कृत्य की चर्चा थी । सभी अखबारो के मुखपृष्ठ पर उसकी तस्वीरो के तथा माता पिता की तस्वीरो स भरे पड़े थे । वह एक दिन म ही समस्त युवा शक्ति का हृदय सम्राट बन बठा था । छात्र सगठन दलो म उससे मिलने आते । पर वह तो अचेतन अवस्था म पड़ा था वो भी यही कहते—

"आटी जी अकिल जी आप दुखी न हो हम आपक साथ है ।

आप किसी बात की चिंता मत करिये,

धीरज ने हमारे अधिकारो की रक्षा के लिये अपन प्राण सकट मे डाल है, हम उसके लिए कुछ भी कोर कसर नही उठा रखेंगे ।"

लेकिन आज छः महीने हो गये हैं, धीरज अब भी हॉस्पिटल में पड़ा जीवन मृत्यु से संघर्ष कर रहा था, पर पास हैं केवल माता पिता बहनें और कोई दो चार अंतरंग मित्र तथा नजदीकी रिश्तेदार।

ये सारे आश्वासन अब धूमिल पड़ चुके हैं अपने पास जो भी पैसा था वे उसके माता पिता खर्च कर चुके हैं, महंगी दवाइयां, इंजेक्शन वे उसके लिए लाते रहे हैं पर धीरज की हालत में सुधार नहीं हुआ है उन्होंने जो थोड़ा बहुत पैसा उसकी बहिनों के शादी के लिए बैंक में जमा कर रक्खा था वो भी उसका इलाज कराने में समाप्त हो गया है। जी पी एफ और बीमा से भी वे लोन ले चुके हैं, उसकी मां के सारे आभूषण भी धीरे धीरे करके सुनार के पास गिरवी रखे जा चुके हैं केवल इसी आशा से कि धीरज ठीक हो जाये पर सारे प्रयास बेकार हो गये हैं।

बेटे के लिये सब कुछ लुटाकर वे कंगाल बन गये हैं अखबारों में उनका ज्ञापन छप रहा है कि उनके पास अब धीरज के इलाज के लिए कोई गुंजाइश नहीं है लेकिन सब कानों में तेल डाले बैठे हैं।

कहां गये वे वादे वे सारे वादे आश्वासन, सहानुभूति सूचक शब्द शायद सब चुनावी लहरों में बह गये हैं।

वापस चुनाव की सरगर्मियां तीव्र हो रही हैं। सब अपनी अपनी अपनी रोटी सेकने में और वोट पक्के करने में लगे हुए हैं। सत्ता सुख को उपलब्ध करने के लिए दल बदलने का दौर चल रहा है, वे जीप कारों में घूमकर चुनाव प्रचार करने में व्यस्त हैं। चुनाव प्रचार में पानी की तरह पैसा बहा रहे हैं।

किसे चिन्ता है उस धीरज की, जो अस्पताल के एक वार्ड में पड़ा अपने जीवन से संघर्ष कर रहा है।

ये फिर विजय का सेहरा बांधकर जुलूस निकालेंगे पांच सितारा होटलों में इनके लिये भव्य आयोजन होंगे। शपथ लेते समय ये सम्पूर्ण जनता को आश्वस्त करेंगे लेकिन मि. पंकज का इकलौता बेटा धीरज ■ बहनों का लाडला भाई धीरज तब भी अस्पताल के किसी वार्ड में लेटा अपने जीवन से जूझ रहा होगा। उसके माता पिता टकटकी लगाये यूं उसकी ओर देख रहे होंगे लेकिन उनकी व्यथा सुनने वाला समझने वाला शायद कोई नहीं है।

धीरज के भविष्य के प्रति अब वे धीरे धीरे निराश होते जा रहे हैं और उनका अपना धीरज भी छूटता जा रहा है।

सच ही तो है जब समय विपरीत हो जाता है और मनुष्य हर तरफ से कष्टों से घिर जाता है उस समय अपने भी पराये लगते है, चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा लगता है । धीरज के माता-पिता के जीवन में छाया संत्रास का यह अंधेरा शायद कभी समाप्त नहीं होगा ।



"आत्मबोध"

नेहा के गले में अपनी नन्ही नन्ही बाँहे डालकर सोनू अक्सर एक ही प्रश्न पूछ बैठता है—

बताओ ना मम्मी । पापा कब आयेंगे ? कब वे मेरे लिये ढेर सारे खिलौने लायेगें ? सबके पापा उनके लिये चीजें लेकर आते हैं पर मेरे पापा क्यों नही आते ?

बताओ न मम्मी पापा कब आयेंगे ? क्या वो अपने बेटे से नाराज हैं ? मम्मी ! नन्ही सी जान और ढेर सारे प्रश्नो का अम्बार । पता नहीं उसके इस छोटे से मस्तिष्क मे इतने सारे प्रश्न कैसे उभर कर आते हैं इस पर भी वह उसे आश्वस्त करने के लिये उत्तर देती—

आयेंगे बेटा तुम्हारे पापा जरुर आयेगें, और तुम्हारे लिये ढेर सारी चीजें और ढेरसारे खिलौने भी लायेंगे ।

बच्चा आखिर बच्चा ही तो ठहरा वह सतुष्टि पूर्ण स्वर मे कहता—

'हाँ ! मम्मी अब की बार जब पापा ढेर सारे खिलौने लायेंगे तो मैं किसी को भी नही खिलाऊगा, सब मुझे ललचाते हैं, कोई भी अपना खिलौना खेलने को नही देता ।'

और वह शात होकर माँ की गोद म सिर रखकर सो जाता है, पर नेहा की आँखों में नींद कहाँ । वह झूठ के जिस दुवह भार को अपने हृदय में समेटे जी रही है यह तो उसका अन्तमन ही जानता है किससे कहे अपनी अन्तव्यथा ।

घर मे बूढे सास ससुर हैं जिनके वृद्धावस्था का सहारा एक मात्र बेटा ही घर से विमुख हो गया है, उनसे कुछ कहना उनके घावो को कुरेदना है । बच्चे का जी रखने के लिये हँसना बोलना सब पडता है, अपने हृदय पर पत्थर रखकर उसकी सारी इच्छायें भी पूरी करनी पडती हैं । घर मे आने वाली जिस बडी बूढी के वह चरण स्पर्श करती हैं, वे आर्शीवाद के स्थान पर यही वाक्य कहती हैं-

"अपने पति को घर वापिस बुलाले' यही तेरे लिये सबसे बड़ा आशीष है।"

ऐसा लगता है, जैसे पति को घर से दूर भेजने की जिम्मेदारी उसी पर है उसका तो जीवन ही हास्यास्पद हो गया है जो मिलता है एक ही प्रश्न, !

कब आयेंगे तुम्हारे पति ? तुम्हारे जीवन साथी कब आयेंगे ? सास ससुर की प्रतीक्षा रत निगाहे जैसे उसके बदन मे सलाख की तरह चुभती रहती—

"क्या हमें बेटे की ओर से जीवन भर कोई सुख नही मिलेगा" ?

और दिन रात उसका पीछा करती बेटे की उत्सुक दृष्टि पिता को देखने की ललक लिये उसका भोला बचपन—

मम्मी पापा कब आयेंगे ? निरुत्तर सी हो उठती है वह। वसे अगर देखा जाये तो इस सम्पूर्ण घटना क्रम मे वह कही भी दोषी नहीं है ? उसके पति की आकाश कुसुम छूने की तीव्र महत्वकांक्षा ने ही उसे वियोगिनी का जीवन जीने के लिये विवश कर दिया है जिसमे उसकी सम्पूर्ण कामनायें होमायित हो रही है, है, नही तो क्या कमी थी उसमें।

नेहा स्वयं पढी लिखी पोस्ट ग्रेजुएट है उसका पति माँ बाप का इकलौता पुत्र है शहर मे तीन चार मकान हैं उनके। पर जो ऊपरी चमक दमक से आकर्षित हो जिसने पाँच सितारा होटल में ऐश आराम किया हो उसके लिये घर की थाली का क्या महत्व है, यह तो ईश्वर की उसके उपर असीम अनुकम्पा है कि वह आत्म निर्भर है, अपना और अपने बेटे का पेट भर सकती है नहीं तो जीवन मे कुछ और भी त्रासदियो से गुजरना पडता।

सच पूछो तो दस वर्ष हो गये विवाह को, नेहा ने पति सुख का एक क्षण भी अनुभव नही किया। हर समय वह जैसे मुखौटा सा लगाये रखता। अन्तरंग क्षणो मे भी वह मुखौटा उससे दूर न रहता।

विवाह के बाद कुछ वर्षों तक तो सन्तान न होने के कारण रवि उद्विग्न रहा, और जब सोनू का जन्म हुआ तो भी उसे सहन नहीं हुआ जिसकी वह कामना करता था जब वह सच सामने आया तो उस यथार्थ को भी वह सहन नहीं कर सका।

रवि को हर समय लगता जसे नेहा केवल सोनू की देखभाल करती है, उसके लिये एक क्षण भी नही निकाल सकती, उसकी सारी व्यस्तता भाग दौड

केवल सोनू तक सीमित है उसकी व्यस्त दिनचर्या में रवि के लिये कहीं भी कोई स्थान नहीं है। कहते हैं सन्तान माता पिता की आत्मा का अंश होती है पर जब भी सोनू रवि के सामने आता, वह आग बबूला हो उठता, उस की रगों में उसी का खून दौड़ रहा था पर पता नहीं सोनू को सामने देखते ही रवि क्रूर हो उठता।

नेहा सोनू की देखभाल में व्यस्त रही और वह अपने आप से लड़ता रहा। इस तरह उन दोनों के बीच एक दीवार सी उठती गई जिसमें दिन प्रतिदिन शब्दों के घात प्रतिघात से मजबूती आती गई।

वह कुछ ज्यादा ही निष्ठुर होता गया। जब वह सवेरे कहती—

—मुझे देर हो रही है थोड़ा स्कूटर से टैक्सी स्टैन्ड छोड़ दिजीये।

तो नकारात्मक उत्तर मिलता।

अगर वह कहती—

सोनू को स्कूल छोड़ दिजीये।

वह तपाक से उत्तर देता—

मुझे पहले ही लेट हो रही है।

फालतू काम के लिये मेरे पास समय नहीं है।

अनुरोध भरे शब्दों में नेहा कहती घर की स्थिति से आप परिचित है, आप कोई काम क्यों नहीं खोज लेते?

वह खीज कर उत्तर देता— मेरे से किसी की गुलामी नहीं होती, मैं तो अपना काम करूंगा। कीड़े मकोड़े की तरह रेंगना मुझे मंजूर नहीं मैं तो इतनी ऊँचाई तक जाऊँगा कि आसमान की बुलन्दियों को छू लूंगा।

पर कहाँ छू सका था वह बुलन्दियों को। पर तो धरती पर ही टिकाने पड़ते हैं पर उसके तो पैर धरती पर टिकते ही न थे किसी तरह वह सफलता हासिल कर सके, अपना व्यापार जमाले इसके लिये नेहा ने क्या नहीं किया। बूढ़े बाप ने पैसा लगाया ऋण लिया, लोगों से कर्ज लेकर रुपये दिये कि वह कारबार चलाये पर उसने सब मटियामेट कर दिया सिर पर कर्ज का भार चढ़ गया था अलग।

जब लेनदार उसे परेशान करने लगे तो वह नेहा के गहने तक बचने को उतारू [redacted] गया नेहा से यह उत्तर मिलने पर कि—

गहने उसके पास नही है, वह उसे नहीं दे सकती, ससुर जी के पास रखे है उनसे ले लिजीय । तो वह अनाप सनाप बकने लगा—

—पहन लेना गहने ।

—सजा सवार लेना अपने आप को ।

—अरे जब मैं नही रहू गा । तो गहने पहन कर किसे दिखाओगी ।

पिता जी के मागने पर उन्होंने आभूषण देने से साफ इन्कार कर दिया—

' हमारे पास रखे गहने बहू की अमानत है उसके विपदा मे साथी हैं हम किसी भी कीमत पर तुम्हे यह गहने नही देगे ।"

तो वह आग बबूला हो उठा था, नेहा को सुनाकर बोला था—

"तुझे गहनो से प्यार है, पति की इज्जत से प्यार थोडे ही है, जब मैं परेशान होकर घर बार छोड कर चला जाऊगा, तब माथे पर हाथ धर कर रो लेना ।" और एक दिन उसने इस धमकी को सच कर ही दिखाया । तीन वर्ष हो गये वह घर से दूर चला गया और परदेश मे जाकर बैठा है कभी कभार पत्र आ जाते हैं वह भी उलाहनो से भरपूर—

तू मेरी चिन्ता मत कर । अपनी और अपने बेटे के सुख की सोच ।

व्यग्य बाणो से आहत होते होते वह इतनी अधिक असतुलित हो उठी है कि कभी कभी तो ऐसा लगता है कि वह पागल हो जायगी । इधर आजकल वह और भी बदलाव लक्ष्य करने लगी है । जब भी गली मोहल्ले से गुजरती चार औरते झुण्ड बनाये खडी नजर आती और उसकी ओर सकेत करके मुँह फेर कर हँसने लगती इस प्रकार के साकेतिक हावभाव की जब पुनरावृत्ति होने लगी तो उसके सब्र का बाध टूट पडा ।

पडोसिन की नौकरानी अक्सर उसके घर आया करती थी, एक दिन नेहा उससे पूछ ही बैठी—

'क्यो री राधा— ये औरते मुझे देखकर इशारे बाजी क्यो करती है, और फिर मुह फेर हँसने क्यो लगती है—'

पहले तो राधा टस से मस नहीं हुई पर जब नेहा ने कुछ प्रलोभन दिया तो वह सच बात उगल ही बैठी—

अब क्या बताएं बीबी जी ये सब औरतें कहती है कि बाबूजी ने परदेश में दूसरा विवाह रचा लिया होगा तभी तो घर आने का नाम नहीं लेते।"

उसकी इन बातों को सुनकर नेहा के हृदय मस्तिष्क में विचारों की आंधी से चलने लगी।

क्या ऐसा हो सकता है ? नहीं नहीं वह इन सब फालतू बातों को अपने हृदय में स्थान नहीं देगी।

पर फिर मन में ख्याल आता है—जिस तरह का उन्मुक्त स्वभाव उसके पति का है उसमें तो यह बात होनी असंभव नहीं। अगर वास्तव में यह सच हुआ तो क्या होगा उसका ? उसके सोनू का ? सोनू के भविष्य का ?

क्या उसे सारी उम्र यूं ही तिलतिल करके जलना पड़ेगा ?

नहीं अब वह और प्रतीक्षा नहीं करेगी, वह स्वयं सोनू को लेकर उनके पास जायगी, सोनू के भविष्य के लिये उनसे लौटने का आग्रह करेगी, वह बच्चे के लिये उनके सामने गिड़गिड़ाने को भी तय्यार है—

"मैं आपका राई रत्ती कर्ज चुका दूंगी आपको लेनदार रुपयों के लिये परेशान न करेंगे, कम से कम मेरे लिये न सही इस नन्ही सी जान सोनू के लिये तो घर वापस लौट चलिये।'

नेहा दृढ़ निश्चय करके बेटे को साथ लेकर घर से आखिर निकल ही पड़ी वैसे भी गर्मी की छुट्टियां थी सोनू खुश था कि—

पापा के पास जा रहे हैं रेल गाड़ी में बैठ कर जायेंगे, आहा कितना मजा आयेगा। बाम्बे पहुंच कर खोजने पर उसे रवि का क्वाटर मिल ही गया।

दोपहर के दो बजे जब नेहा ने रवि के घर का द्वार खटखटाया, तो नारी स्वर सुनाई पड़ा—

कौन है ?

प्लीज दरवाजा खोलिये, मैं बहुत दूर से आ रही हूं। मुझे बहुत जरूरी काम है।

नारी स्वर मे उत्तर सुनाई पडा।

जी वे घर मे नही है। प्लीज आप दरवाजा खोलिये एक बार मेरी बात सुनने का कष्ट तो करिये।

सुन्दर सी सजी सवरी महिला ने द्वार खोला उसने सोफे पर बैठने का आग्रह किया, वह बैठ गई तथा सानू को भी बैठा लिया बाहर थोडी बहुत बूंदा बादी हो रही थी इसलिये वह भीग भी गई थी। उसकी इच्छा हो रही थी कि गर्म-गर्म चाय का प्याला उसे मिल जाये तो कितना अच्छा हो।

उसी समय वह महिला अन्दर चाय बनाने चली गई वह बैठी बैठी कमरे की वस्तुओ का निरीक्षण करने लगी।

कमरा करीने से सजा हुआ था कमरे की सम्पूर्ण व्यवस्था किसी के सुरुचिपूर्ण का एहसास करवा रही थी मेज पर उसके पति की तस्वीर थी जो मंद मंद मुस्करा रहा था।

नेहा बोली—क्या मुझे मिस्टर रवि की प्रतीक्षा करनी पडेगी?
वह महिला बोली—

हां वह सध्या के बाद घर लौटते है आप आराम करिये, मुझसे कहिये, आपको उनसे क्या जरुरी काम है।

—जी मुझे जो कहना है उन्ही से कहूँगी, मैं उनकी बहुत घनिष्ठ मित्र हूँ।

झूठ बोलने को विवश थी वह। लेकिन उसके गले मे पडा मगल सूत्र रश्मि के मन मे एक उत्कठा सी जगा गया।

नेहा लम्बी यात्रा से थक गई थी इसलिये उस कमरे के एकात वातावरण मे नींद आनी स्वाभाविक थी।

सध्या होने पर नेहा नहा धोकर तरोताजा होकर वह ड्राइग रुम मे बैठी ही थी कि कालबेल की आवाज सुनाई पडी, दरवाजा खोलने पर सामने रवि उसका पति खडा था नेहा को एकाएक सामने देखकर वह एक बार तो हतप्रभ सा हो गया लेकिन फिर आवेश मे आकर बोला—

क्यो आई हो तुम यहा? तुम्हे हिम्मत कैसे हुई यहाँ आने की? जाओ उन्ही के पास जाओ जो तुम्हारा पक्ष लेते है मुझे तुम्हारा एक पैसा भी नही चाहिये।

नहा समेत स्वर मे बोली—आप मेरी बात तो सुनिये सब कुछ छोड़कर घर वापस लोट चलिये मैं आपकी साख गिरने नही दू गी, एक-एक पाई चुका दूगी। आपको किसी के सामने नीचा नहीं देखना पड़ेगा, मैं आपके मान सम्मान पर किसी प्रकार की ठेस नही आने दूगी।"

पर रवि लगातार बोले जा रहा था। चली जावो यहाँ से जब मैने गहने मागे तब तुम्हारा पति प्रेम कहाँ गया। जब बाजार मे मेरी इज्जत नीलाम हो रही थी तब कहाँ गया था तुम्हारा यह प्रस्ताव। मुझे परेशान न करो मेरे तुम्हारे रास्ते अलग हैं, तुम वापस लौट जाओ।

नेहा अनुराग के स्वर मे बोली—

कम से कम मेरे लिए न सही इस नन्ही सी जान सोनू के लिये घर वापस लौट चलिये इसने आपका क्या बिगाड़ा है इसे पिता के प्यार से वंचित क्यो कर रहे है यह आपके बिना नही रह सकता दिन रात पापा-पापा की रट लगाता रहता है।

सोनू कमरे के कोने मे खड़ा दीवार की तरफ मुँह किये सुबक सुबक कर रोये जा रहा था उसकी हिचकी बद नही हो रही थी, वह बीच-बीच मे पापा-पापा बोलता जा रहा था कुछ क्षण के लिये कमरे का वातावरण बोझिल हो उठा था।

रवि सोच ही नही पा रहा था कि उसे क्या करना चाहिये वह तेज कदमो से कमरे मे इधर से उधर घूम रहा था कुछ क्षण के लिये वह अकेला रहना चाहता था इसलिये वह दूसरे कमरे में चला गया— रवि दूसरे कमरे मे जाकर टबल बेड पर धम्म से बैठ गया आखे बन्द कर ली। और सोचने लगा एकाएक उसने रश्मि को आवाज दी पर किसी प्रकार का प्रत्युत्तर न पाकर वह उठ बैठा अचानक ड्रेसिंग टेबिल के सामने रखे पत्र पर उसकी निगाह पड़ी—

प्रिय रवि,

तुमसे मिलने आई महिला तुम्हारी घनिष्ठ मित्र नहीं अपितु तुम्हारी धर्मपत्नी है मैंने तुम दोनो की बातें सुनली है। नेहा के गले मे पड़ा मगल सूत्र और उसके साथ तुम्हारा प्रतिरूप तुम्हारे ही बेटे के जीवन को सुखमय बनाने के लिये मैं तुमसे बहुत दूर जा रही हूँ। मुझे ढूढ़ने का प्रयास न करना। हम दोनो ने जो सुख के क्षण एक साथ बिताये हैं उन क्षणो की तुम्हे सौगन्ध है कि तुम अपनी पत्नी और बच्चे के साथ घर वापस लौट जाओ। —तुम्हारी रश्मि

घरौंदा

आज दो वर्ष होने को आये, चारपाई पर पडे रहना शिप्रा की नियति बन चुकी है । खटिया पर लेटे-लेटे रुग्ण अवस्था म वह कभी छत की कडिया गिनती है, कभी चारो ओर लगे मकडी के जालो को देखती है, ज्यादा ऊब होने पर कलेण्डर की तारीख गिनने लगती है सबसे पूछती है—

अब अवकाश कब पडेगा ?

दीपावली की छुट्टियां कब से हो रही है ?

बच्चे छुट्टियो मे घर कब तक आयेंगे ?

इन सबका हिसाब चाहे कोई उसे बताय या न बताये, वह अपनी उगलियो पर सदा यही हिसाब जोडती रहती है । बिस्तर पर पडे पडे और कोई काम भी तो नही है समय गुजरे भी ता कमे ।

शिप्रा के कमरे से बाहर का दृश्य स्पष्ट दिखाई देता है । एक तरफ बाग बगीचे, सामने सडक पर दौडती कारें, स्कूटर,मोटर साइकिल के हार्न की आवाजें कानो मे हर समय गू जती रहती है । कभी-कभी जी बहलाने के लिए सडक पर आने जाने वाले व्यक्तियो को देखती रहती है । इनमे से कुछ बच्चो से वह परिचित भी हो चुकी है जो बस्ते लटकाये रिक्शा पर चढकर स्कूल जाते हैं उनका रिक्शा नही दिखने पर वह व्याकुल हो उठती है । सर पर सब्जी की खचिया उठाये दो तीन औरते उसके दरवाजे पर भी हॉक लगा जाती है इन सबने उसकी दिनचर्या म अपना स्थान बना रखा है पढे-पढ कर भी ता क्या, ज्यादा ऊब होने पर पास पडे टी वी का बटन उमेठने लगती है ।

पर क्या शिप्रा शुरु से ऐसी ही थी वह स्वय अपने बारे मे सोचती है—क्या मैं वही शिप्रा हू जो मीलो दूर कुए से पानी भरकर लाती थी,सारे बच्चो का पालन पोषण करती थी स्कूल मेंउनकी अभिभावक घर मे माँ और बीमार पडने पर डाक्टर का काय भी उसे ही अदा करना पडता था । आस पडोस के सारे लोग उसकी सक्रियता पर आश्चर्य चकित थे । कभी उसने बच्चो के लिए ट्यूटर नही रखा वह स्वय बच्चो को पढाती लिखाती, उनका होमवर्क करवाती । स्कूल टीचर बच्चो से कहते—

"तुम्हारी मा स्वय इतना अच्छा पढाती है, तुम्हे किसी के कोच की क्या जरूरत है"

बच्चो के बीमार पडने पर वह दिन रात एक कर देती। उसे याद है जब एक बार तीनो बच्चो का चेचक का टीका एक साथ लगा था तब सारे बच्चे बुखार म जलने लगे थे सबन मिलकर उसे हलकान कर दिया था तब भी वह दिन रात घर बाहर दौडती रहती। क्याकि घर की सारी व्यवस्था भी उसे ही करनी पडती थी। घर मे न कोई बडा आदमी था और न कोई नौकर चाकर सब व्यवस्था उसे ही करनी पडती थी।

उसका कौशल एव भाग दौड देखकर डाक्टर कहते–

आप तो इतनी समझदार है, बच्चो का इलाज करते करते स्वय डाक्टर बन बैठी है, सारी दवाओं के नाम तो आपको मुँह जबानी रटे पडे है, आपको हम क्या सलाह दे सकते है।

शिप्रा के पति ठहरे सरकारी अफसर। अक्सर बाहर दौरे पर ही रहा करते। बच्चो की उगली पकड कर उनका स्कूल म एडमिशन कराना, फीस भराना सब शिप्रा का दायित्व था।

शिप्रा बचपन मे स्वय पढ लिख नही पाई थी पर पढाई की ओर उसका बहुत रूझान था। जब वह छोटी थी तो अक्सर अपने बाबूजी स स्कूल जाने के लिये जिद कर बठती थी, क्योकि घर से स्कूल जाने के लिये घोडा बग्घी साइस सब मौजूद थे, पर उसकी बातें सुनकर बाबूजी पढाई की बात अक्सर टाल दिया करते–

अरे मुनिया तू पढाई की रट क्यो लगाती रहती ह ?

तुम्हे कोई डिप्टी कलेक्टर बनना है क्या ?

क्या तुझे दफ्तर मे कलम घिसनी है ?

अरे तेरे को घर गृहस्थी ही तो चलानी है, उसके लिय पढाई करने की क्या जरूरत है ?

मिडिल पास करते ही अपने दायित्व की पूर्ति के लिय पिताजी ने शिप्रा का विवाह छोटी उम्र म कर दिया गया। लेकिन पति के रूप में उसे पढा लिखा विद्वान वर प्राप्त हुआ इसलिये उसके मन मे जो पढने की ललक थी उसे सप्तपदी के बन्धन भी मिटा नहीं सके।

उसके स्मृति पटल पर अभी भी वह दृश्य अंकित है, जब विनू और विजू के जन्म के बाद वह अत्यन्त व्यस्त हो उठी थी। स्वयं तो छोटी उम्र की थी पूर्ण व्यस्क भी नहीं हो पाई थी, ऊपर से दो बच्चों के पालने की जिम्मेदारी। जब उन दोनों की चोटी गूंथ कर माथे पर काजल का डिठौना लगाकर वह उन्हें निहारती तो उसे उनमें लवकुश की छबि के दर्शन होते बच्चों के प्रति उसकी व्यस्तता भी उसके मन से पढ़ाई करने की भावना निकाल नहीं सकी थी।

और इसी ज्ञान पिपासा ने शिप्रा को हाई स्कूल बाद की परीक्षा देने पर विवश कर दिया। वह भूली नहीं है उस दुःसह व्यथा को।

जब बिन्दु गर्भ में थी और वह मैट्रिक की परीक्षा दे रही थी उसका मुँह पीला पड़ गया था आंखों के नीचे काले धब्बे से नजर आते थे पास पड़ोस के लोग यहां तक कि उसके भय्या जब भी देखते चिन्तातुर होकर पूछ बैठते—

शिप्रा— तेरा मुँह इतना उतरा हुआ क्या है ?

क्या तू रात भर जाग कर पढ़ती है। क्या तू बिना कुछ खाये पीये परीक्षा देने चली जाती है ? अरे शिप्रा ज्यादा नहीं तो थोड़ा बहुत दूध ही पी लिया कर।

पर शिप्रा मौन रहती। वह सोचती यदि मैंने सच उगल दिया तो उसे परीक्षा देने से वंचित होना पड़ेगा। शिप्रा की इस लगन ने ही उसे मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण कर दिया था।

लेकिन उसके पश्चात शिप्रा गृहस्थी के चक्कर में ऐसी पड़ी कि उलझती ही चली गई।

एक के बाद एक सन्तानों को जन्म देने के बाद शारीरिक दृष्टि से वह इतनी कमजोर होती गई कि एक बार तो उसके प्राणों पर ही बन आई थी। उस समय उसकी बड़ी बेटी बिन्दु छाया की तरह उसके साथ लगी रहती। भाई बहनों को सम्भालना, माँ को अस्पताल में भर्ती कराना, घर की व्यवस्था करना सब उसे ही तो देखना था वह सबसे बड़ी जो थी। बाबूजी तो हर मास वेतन मिलने पर रुपये भेजकर सब दायित्वों से मुक्ति पा लेते थे पर शिप्रा को दो दो वर्ष के अन्तराल से जो प्रसव पीड़ा सहन करनी पड़ती थी, उसे देख सुनकर बिन्दु अन्दर तक कांप उठती थी, कभी कभी तो उसे लगता कि कहीं माँ इसी प्रसव पीड़ा के दौरान समाप्त तो नहीं हो जायेगी। उस समय हास्पिटल में लेबर रूम के बाहर खड़ी मां की वेदना पूर्ण चीख पुकार सुनकर उसके हाथ प्रार्थना के लिए स्वतः ही जुड़ जाते और वह अस्फुट स्वर में बुदबुदाने लगती—

हे भगवान ! मरी मा को बचा लिजीये ।

जो भी डाक्टरनी लेबर रूम से बाहर निकलती बिन्दु उसके पास बदहवास सी भाग कर पहुंच जाती एक बार जब मा की हालत बहुत खराब हो गई थी और डाक्टरनी न उसस कहा था—

क्या तुम्हारे घर म कोई बड़ा आदमी नही है, तुम्हारी मा की जान खतरे मे है जल्दी से जल्दी जाकर ये इन्जेक्शन और दवाइया ले आओ तो जान बच सकती है । उस समय वह भागती हांफती हुई दवाइया एव इन्जेक्शन का डिब्बा लेकर तुरन्त दौड़ती हुई हास्पिटल वापिस आई थी और डाक्टर को दवाइया सौंपते हुये बिन्दु ने डाक्टरनी के पैर पकड़ लिये थे—

मरी मा को बचा लिजिये डा साहब नही तो मेरे सारे भाइ बहन बिना मा के अनाथ हो जायेंगे फिर हम कौन प्यार करेगा । डाक्टर साहब प्लीज मेरी माँ को बचा लिजिये न ।

उस भोली बच्ची का आर्तनाद डाक्टर की भी संवेदना को झकझोर गया था, उसने उसे उठाते हुवे कहा-

'घबराओ मत मरी बच्ची, हम पूरी कोशिश कर रहे हैं तुम्हारी मा को हम जरूर बचायेंगे, तुम्हारी प्रार्थना खाली नही जायेगी"

यह सुनकर वह आश्वस्त सी हो उठी थी । लाख रोकन पर भी वह सोचने को बाध्य हो हो उठती थी कि अगर मां न बची तो उसके सारे भाई बहनोंका क्या होगा ? क्या वे भी पड़ौस के उन बच्चो की तरह हो जायेंगे जिनकी मा सौतली है । क्या उसके भाइ बहन भी दिन भर घर के कामा म नौकर की तरह जुटे रहेंगे और उन्हें स्कूल का मुंह देखना भी नसीब न होगा उसकी आखो के समक्ष सौतेली मा की आकृतिया घूमने लगी उसे ऐसा लगा जैसे अपने भाइ-बहन के उपर पड़ने वाले सारे प्रहारो को वह अकेले सहन कर रही है और वह घुटनो मे मुँह छिपाकर सिसक सिसक कर रो पड़ी ।

उसी समय एकाएक लेबर रूम से नवजात शिशु के रोने की आवाज सुनाइ पड़ी और नस ने आकर उसके घुटनो म रक्खे सर को ऊपर उठाकर कहा

'सुनो मुन्नी तुम्हारे बहन हुइ है और तुम्हारी मा अब खतरे से बाहर है ।

उस समय तो बिन्दु को जसे पख से लग गये थे । वह नग पैरा दौड़ती भागती घर जाकर बूढी नानी को यह समाचार द आइ थी और खुशी के आवेग मे उसने सारे भाइ बहनों को इकट्ठा करके गले से लगा लिया था ।

शिप्रा जो इस असहनीय वेदना की मुक्त भोगी थी वह भी इन जान लेवा पीड़ाओं से अन्दर ही अन्दर बहुत टूट चुकी थी उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। अगर सन्तान को जन्म देने की इस प्रसव पीड़ा को उसे बार बार न झेलना पड़ता तो शायद वह आज इतनी अवश कृशकाय और दुर्बल न होती। पूर्ण वयस्क न होने पर भी कच्ची उम्र मे उसने जिस असहनीय वेदना को बार बार सहा है उससे वह अन्दर तक खोखली सी हो गई है। काश उसके बाबूजी उसकी शादी जल्दी न करते तो उसे इन त्रासदियों से बार बार गुजरना न पड़ता और आज उसकी यह हालत कदापि न होती।

वह चाहती है कोई उससे कुछ पूछे, उसके अनुभव का लाभ उठाये तो वह यही कहेगी कि छोटी उम्र मे शादी करना अपराध है छोटी उम्र में शादी करने पर मातृत्व का भार उसके लिये मौत का कारण हो सकता है। माता पिता को चाहिये कि कम उम्र मे अपनी बच्चों की शादी करके पाप के भागी न बनें और न ही अपनी बच्ची का नारकीय जीवन जीने के लिये विवश करें।

केवल यही नहीं समाज में ऐसी कोमल कलियाँ हजारों की संख्या में हैं जिन्हें छोटी उम्र में विवाह होने पर अपनी कामनाओं का होमार्पित करना पड़ता है मातृत्व के उस गौरवमय पद को वहन करना पड़ता है जिसके लिये वह तन मन से तैयार भी नहीं होती।

वह समाज की इन रूढ़ियों के प्रति चेतना जागृत करेगी। वह भले ही अवश है पर अब वह और बालिकाओं को इस दुश्चक्र का शिकार नहीं होने देगी।

शिप्रा अपने आप को अक्षम सिद्ध नहीं होने देगी, वह अपने पैरों का इलाज करवायेगी स्वयं को सक्षम बनायेगी ताकि वह घर घर घूम कर और बालिकाओं को इस बाल विवाह की आहुति मे बलिदान होने से रोक सके। वह भले ही सामाजिक एवं पारिवारिक दृष्टि से दंशित हुई है, पर दूसरों का इस दंश का शिकार हरगिज न होने देगी।



नाम	श्रीमती शीला व्यास
जन्म	1 जुलाई 1944
जन्म भूमि	वाराणसी (उत्तर प्रदेश)
कर्म भूमि	बीकानेर (राजस्थान)
शिक्षा	एम ए द्वय, इतिहास, हिन्दी, बी एड

- एम ए (हिन्दी) काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, वाराणसी
- एम ए (इतिहास) राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर
- बी एड राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर

प्रकाशित पुस्तकें अनुभूति के स्वर (काव्य संग्रह)
हिन्दी व्याकरण कक्षा 3 से 8 तक
अंग्रेजी व्याकरण कक्षा 3 से 8 तक

पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित—शिविरा, छकियारी, सृजन के आयाम, आज, राजस्थान स्टैंडर्ड, दिशाकल्प (पाक्षिक पत्र)

आकाशवाणी बीकानेर केन्द्र द्वारा कविताओं एवं कहानियों का निरंतर प्रसारण

प्रकाश्य दंश (लघु उपन्यासिका) और इन्द्रधनुष के पार (काव्य संग्रह)

सम्प्रति शिक्षा विभाग, सहायक अध्यापिका
राजकीय बोथरा माध्यमिक बालिका विद्यालय
गंगाशहर बीकानेर, (राजस्थान)